* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

भगवान् वराह

राधा-कृष्ण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९०
गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, सितम्बर २०१६ ई०
संख्या ९
पूर्ण संख्या १०७८

'दोउ चकोर, दोउ चंद्रमा'

दोउ चकोर, दोउ चंद्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ।
दोउ चातक, दोउ मेघ प्रिय, दोउ मछरी, जल दोउ॥
आस्त्रय-आलंबन दोउ, बिषयालंबन दोउ।
प्रेमी-प्रेमास्पद दोउ, तत्सुख-सुखिया दोउ॥
लीला-आस्वादन-निरत, महाभाव-रसराज।
बितरत रस दोउ दुहुन कौं, रचि बिचित्र सुठि साज॥
सहित बिरोधी धर्म-गुन जुगपत नित्य अनंत।
बचनातीत अचिन्त्य अति, सुषमामय श्रीमंत॥
श्रीराधा-माधव-चरन बंदौं बारंबार।
एक तत्त्व दो तनु धरें, नित-रस-पाराबार॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, सितम्बर २०१६ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹२००
सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹१०००
सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (₹2700), पंचवर्षीय US$ 225 (₹13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—भगवान् सदा ही तुम्हारे अत्यन्त समीप हैं, तुम्हारी प्रत्येक स्थितिको जानते हैं, तुम्हारी हरेक आवाजको सुनते हैं। बस, विश्वासपूर्वक पुकारनेकी देर है। तुरंत तुम्हारी पुकार सुनेंगे और तुम्हें कष्टोंसे छुड़ा देंगे।

याद रखो—भगवान् तुम्हारे परम सुहृद् हैं, निकट-से-निकटतम स्वजन हैं। तुम्हारा दुःख सुनकर वे स्थिर नहीं रह सकेंगे। सच्चे मनसे उन्हें अपना परम सुहृद् समझकर पुकारो, तत्काल तुम्हारी सुनवाई होगी और भगवत्कृपासे तुम दुःखोंसे तर जाओगे।

याद रखो—भगवान् परम दयालु हैं, तुम चाहे कितने ही पतित, कितने ही पातकी और कितने ही घृणित क्यों न हो, भगवान् तुमसे घृणा नहीं कर सकते। इस बातका निश्चय करो और कातर-स्वरसे उन्हें पुकारो। वे उसी क्षण तुम्हारी सारी विपत्ति हर लेंगे।

याद रखो—भगवान् परम आश्रय हैं, चाहे सारा संसार तुम्हें भूल जाय, चाहे घर-परिवारके सभी लोग तुमसे मुख मोड़ लें, चाहे तुम सर्वथा निराश्रय हो जाओ, एक बार हृदयसे उनके परम आश्रय स्वभावपर विश्वास करके मन-ही-मन उनका स्मरण करो। देखोगे, तुम्हें कितना शीघ्र और कितना मधुर और निश्चित आश्रय मिलता है।

याद रखो—भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, तुम्हारा दुःख चाहे कितना ही प्रबल हो, तुम्हारे संकट चाहे कितने ही पहाड़-जैसे हों और तुम्हारी विपत्ति चाहे किसीसे भी न टलनेवाली हो, भगवान्की शक्तिके सामने सभी तुच्छ हैं। तुम विश्वास करके सर्वशक्तिमान्को पुकारो—उनकी शक्ति अविलम्ब तुम्हारी सहायता करेगी और तत्काल तुम्हारे पहाड़-से दुःख-कष्ट काजलके ढेरकी तरह उड़ जायँगे।

याद रखो—भगवान् सर्वलोकमहेश्वर हैं, ईश्वरोंके महान् ईश्वर हैं। तुमपर कैसे भी नीच कुग्रहकी दशा आयी हो, तुमको कैसा भी प्रबल निकृष्ट कर्म बुरा फल भुगताने आया हो और तुमपर किसी भी महान् देवता या दैत्यका कोप बरसता हो, भगवान्को पुकारनेपर ये सभी डरकर हट जायँगे; क्योंकि ये सभी उनके चेरे हैं। इनका उन्हींपर वश चलता है, जो भगवान्की सर्वलोक-महेश्वरतापर विश्वास करके उनको नहीं पुकारते।

याद रखो—भगवान् पतितपावन हैं। जैसे सूर्यका स्वभाव ही अन्धकारका नाश करना है। चाहे कितना भी गहरा अँधेरा हो, सूर्यके उदय होनेसे कुछ पहले ही मर जाता है, वैसे ही भगवान्के नामाभाससे ही पापसमूह नष्ट हो जाते हैं। मनमें इस बातपर श्रद्धा करो और उनके नामका आश्रय लो। फिर देखो, पापोंका कितने अल्पक्षणोंमें ही नाश हो जाता है और यह तो निश्चित ही है कि पाप-नाश होते ही ताप भी नष्ट हो जायँगे; क्योंकि त्रिविध तापके कारण तो ये पाप ही हैं।

याद रखो—भगवान् भयके भी भयदाता और भक्तभयहारी हैं। मृत्युदेवता यमराज भी उनसे भय करते हैं; परंतु भक्तोंको वे नित्य निर्भय रखते हैं। दम्भ-अहंकार, काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर आदि भीतरी शत्रु और रोग-पीड़ा, दानव-मानव, सर्प-सिंह, नाश-निष्फलता आदि बाहरी वैरियोंसे चाहे तुम कितने ही डरे हुए होओ, उनके भक्तभयभंजन विरदपर विश्वास करके ज्यों ही उन्हें पुकारोगे त्यों ही ये सारे शत्रु तुम्हें छोड़कर सटक जायँगे और तुम निर्भय हो जाओगे।

याद रखो—भगवान् परम उदार हैं, तुम चाहे कितने ही दरिद्र हो, कितने ही अभावग्रस्त हो और कितने ही दीन-हीन हो, विश्वास करके उन लक्ष्मीपतिकी ओर कातर-दृष्टिसे देखकर हृदयसे उन्हें पुकारो, तुम्हारे सारे दैन्य-दारिद्र्य और तुम्हारे सारे अभावोंको हरकर वे तुम्हें तुरंत निहाल कर देंगे।

याद रखो—भगवान् रसमय हैं और प्रेमस्वरूप हैं—तुम चाहे कितने ही शुष्क हृदय हो, तुम्हारे हृदयमें चाहे कितनी ही नीरसता भरी हो, तुम चाहे प्रेमकी कल्पना भी नहीं कर पाते हो, उनके प्रेमस्वरूपपर विश्वास करके सरल हृदयसे उनसे प्रेमकी भिक्षा माँगोगे तो वे अपना दुर्लभ प्रेम देकर तुम्हें कृतार्थ कर देंगे।

याद रखो—भगवान् मोक्षके एकमात्र आश्रय और मोक्षस्वरूप हैं। उनके नाम-रूपका चिन्तन करते ही सारे भवबन्धन कट जाते हैं, सारे पाश पटापट टूट जाते हैं। निश्चय करके उनकी शरण ग्रहण करो और सच्ची निर्भरताके साथ उन्हें पुकारो, तुम्हारे अनादि कालके गहरे बन्धन क्षणोंमें कट जायँगे और तुम उनके दुर्लभ मोक्षस्वरूपको पाकर सफल-जीवन हो जाओगे। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

भगवान् वराहका दिव्य स्वरूप

स जयति महावराहो जलनिधिजठरे चिरं निमग्नोऽपि।
येनान्त्रैरिव सह फणिगणैर्बलादुद्धृता धरणी॥

'उन वराह भगवान्‌की जय हो, जिन्होंने समुद्रके अन्तस्तलमें चिरमग्न रहनेपर भी उस (समुद्र)-की आँतोंके समान साँपोंके साथ बलपूर्वक पृथ्वीको उसमेंसे ऊपर निकाल लिया था।'

प्राचीन युगकी बात है। एक दिन मुनिश्रेष्ठ नारद नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित सुमेरुपर्वतके शिखरपर गये और उसके मध्यभागमें ब्रह्माजीका अत्यन्त प्रकाशमान दिव्य एवं विस्तृत भवन देखा। उसके उत्तरप्रदेशमें पीपलका एक उत्तम वृक्ष था, जिसकी ऊँचाई एक हजार योजनकी और विस्तार दोगुना था। उस पीपलके मूलभागके समीप अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त दिव्य मण्डप बना हुआ था, जिसमें वैदूर्य, मोती और मणियोंके द्वारा स्वस्तिक गृह बनाये गये थे। वह दिव्यमण्डप नूतन रत्नोंसे चिह्नित तथा दिव्य तोरणों (बाहरी फाटकों)-से सुशोभित था। उसका मुख्यद्वार पुष्पराग मणिका बना हुआ था, जिसका गोपुर सात मंजिलका था। चमकते हुए हीरोंसे बनाये गये दो किवाड़ उस द्वारकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस मण्डपके भीतर प्रवेश करके नारदजीने देखा, दिव्य मोतियोंका एक मण्डप है, उसमें वैदूर्यमणिकी वेदी बनी हुई है। महामुनि नारद उस ऊँचे मण्डपके ऊपर चढ़ गये। वहाँ उक्त मण्डपके मध्यभागमें एक बहुत ऊँचा सिंहासन था, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। उस मध्यभागमें सहस्र दलोंसे सुशोभित दिव्य कमल था, जिसका रंग श्वेत था। उसकी प्रभा सहस्रों चन्द्रमाओंके समान थी। उस कमलके मध्यमें दस हजार पूर्ण चन्द्रमाओंसे भी अधिक कान्तिमान् कैलासपर्वतके समान आकारवाले एक सुन्दर पुरुष बैठे हुए थे। उनके चार भुजाएँ थीं, अंग-अंगसे उदारता टपक रही थी, वराहके समान मुख था। वे परम सुन्दर भगवान् पुरुषोत्तम अपने चारों हाथोंमें शंख, चक्र, अभय एवं वर धारण किये हुए थे। उनके कटिभागमें पीताम्बर शोभा पाता था। दोनों नेत्र कमलदलके समान विशाल थे। सौम्यमुख पूर्ण चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कृत कर रहा था। मुखारविन्दसे धूपकी-सी सुगन्ध निकलती थी। सामवेद उनकी ध्वनि, यज्ञ उनका स्वरूप, स्रुक् उनका मुख था और स्रुवा उनकी नासिका थी। मस्तकपर धारण किये हुए मुकुटके प्रकाशसे उनका मुख अत्यन्त उद्भासित हो रहा था। उनके वक्ष:स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था। श्वेत यज्ञोपवीत धारण करनेसे उनके श्रीअंगोंकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। उनकी छाती चौड़ी और विशाल थी। वे कौस्तुभमणिकी दिव्य प्रभासे देदीप्यमान हो रहे थे। ब्रह्मा, वसिष्ठ, अत्रि, मार्कण्डेय तथा भृगु आदि अनेक मुनीश्वर दिन-रात उनकी सेवामें संलग्न रहते थे। इन्द्र आदि लोकपालों और गन्धर्वोंसे सेवित देवदेवेश्वर भगवान्‌के पास जाकर नारदजीने प्रणाम किया और पृथ्वीको धारण करनेवाले उन वराह भगवान्‌का दिव्य उपनिषद्-मन्त्रोंसे स्तवन करके अत्यन्त प्रसन्न हो, वे उनके पास ही खड़े हो गये।

भगवान् वराहके इस दिव्य स्वरूपका ध्यानकर उनके मन्त्र—'**ॐ नम: श्रीवराहाय धरण्युद्धारणाय स्वाहा**' का जप करना चाहिये। भूमिकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्योंके लिये भगवान् वराहकी उपासना यथेष्ट है।

[श्रीस्कन्द-महापुराण, वैष्णवखण्ड]

अमूल्य शिक्षा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

• अपने आत्माके समान सब जगह सुख-दु:खको समान देखना तथा सब जगह आत्माको परमेश्वरमें एकीभावसे प्रत्यक्षकी भाँति देखना बहुत ऊँचा ज्ञान है।

• चिन्तनमात्रका अभाव करते-करते अभाव करनेवाली वृत्ति भी शान्त हो जाय, कोई भी स्फुरणा शेष न रहे तथा एक अर्थमात्र वस्तु ही शेष रह जाय, यह बहुत अच्छी उपरामताका लक्षण है।

• श्रीनारायणदेवके प्रेममें ऐसी निमग्नता हो कि शरीर और संसारकी सुधि ही न रहे, यह बहुत ऊँची भक्ति है।

• नेति-नेतिके अभ्याससे 'नेति-नेति' रूप निषेध करनेवाले संस्कारका भी शान्त आत्मामें या परमात्मामें शान्त हो जानेके समान ध्यानकी ऊँची स्थिति और क्या होगी ?

• परमेश्वरका हर समय स्मरण न करना और उसका गुणानुवाद सुननेके लिये समय न मिलना बहुत बड़े शोकका विषय है।

• मनुष्यमें दोष देखकर उससे घृणा या द्वेष नहीं करना चाहिये। घृणा या द्वेष करना हो तो मनुष्यके अन्दर रहनेवाले दोषरूपी विकारोंसे करना चाहिये। जैसे किसी मनुष्यके प्लेग हो जानेपर उसके घरवाले लोग प्लेगके भयसे उसके पास जाना नहीं चाहते, परंतु उसको प्लेगकी बीमारीसे बचाना अवश्य चाहते हैं, इसके लिये अपनेको बचाते हुए यथासाध्य चेष्टा भी पूरी तरहसे करते हैं; क्योंकि वह उनका प्यारा है। इसी प्रकार जिस मनुष्यमें चोरी, जारी आदि दोषरूपी रोग हों, उसको अपना प्यारा बन्धु समझकर उसके साथ घृणा या द्वेष न कर उसके रोगसे बचते हुए उसे रोगमुक्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

• भगवान् बड़े ही सुहृद् और दयालु हैं, वे बिना ही कारण हित करनेवाले और अपने प्रेमीको प्राणोंके समान प्रिय समझनेवाले हैं। जो मनुष्य इस तत्त्वको जान जाता है, उसको भगवान्‌के दर्शन बिना एक पलके लिये भी कल नहीं पड़ती। भगवान् भी अपने भक्तके लिये सब कुछ छोड़ सकते हैं, पर उस प्रेमी भक्तको एक क्षणके लिये भी नहीं त्याग सकते।

• मृत्युको हर समय याद रखना और समस्त संसारको तथा शरीरको क्षणभंगुर समझना चाहिये। साथ ही भगवान्‌के नामका जप और ध्यानका बहुत तेज अभ्यास करना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह परिणाममें परम आनन्दको प्राप्त होता है।

• मनुष्य-जन्म सिर्फ पेट भरनेके लिये ही नहीं मिला है। कीट, पतंग, कुत्ते, सूअर, गदहे और गौवें भी पेट भरनेके लिये उम्रभर चेष्टा करते ही रहते हैं। यदि उन्हींकी भाँति जन्म बिताया तो मनुष्य-जीवन व्यर्थ है। जिनके लिये शरीर और संसारमें सत्ता नहीं है, वे ही जीवन्मुक्त हैं, उन्हींका मनुष्य-जन्म सफल हुआ है।

• जो समय भगवद्भजनके बिना जाता है, वह धूलिमें मिल जाता है। जो मनुष्य समयकी कीमत समझता होगा, वह एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खो सकता। भजनसे अन्त:करणकी शुद्धि होती है, तब शरीर और संसारमें वासना और आसक्ति दूर होती है, इसके बाद संसारकी सत्ता ही मिट जाती है। एक परमात्मसत्ता ही रह जाती है।

• संसार स्वप्नवत् है। मृगतृष्णाके जलके समान है, इस प्रकार समझना ही वैराग्य है। वैराग्यके बिना संसारसे मन नहीं हटता और इससे मन हटे बिना उसका परमात्मामें लगना बहुत ही कठिन है, अतएव संसारकी स्थितिपर विचारकर इसके असली स्वरूपको समझना और वैराग्यको बढ़ाना चाहिये।

• भगवान् हर जगह हाजिर हैं, परंतु अपनी मायासे छिपे हुए हैं। बिना भजनके न तो कोई उनको जान सकता है और न विश्वास कर सकता है। भजनसे हृदयके स्वच्छ होनेपर ही भगवान्‌की पहचान होती है। भगवान् प्रत्यक्ष हैं, परंतु लोग उन्हें मायाके पर्देके कारण देख नहीं पाते।

• शरीरसे प्रेम हटाना चाहिये। एक दिन तो इस शरीरको छोड़ना ही पड़ेगा, फिर इसमें प्रेम करके मोहमें पड़ना कोई बुद्धिमानी नहीं है। समय बीत रहा है, बीता हुआ समय फिर नहीं मिलता, इससे एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाकर शरीर तथा शरीरके भोगोंसे प्रेम हटाकर परमेश्वरमें प्रेम करना चाहिये।

• जब निरन्तर भजन होने लगेगा, तब आप ही निरन्तर ध्यान होगा। भजन ही ध्यानका आधार है। अतएव भजनको खूब बढ़ाना चाहिये। भजनके सिवा संसारमें उद्धारका और कोई उपाय नहीं है।

संघर्षका कारण और वारण

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

जिस प्रकार एक-एक वृक्ष मिलकर वन बन जाता है तथा एक-एक सैनिक मिलकर सेना बन जाती है, उसी प्रकार कुछ व्यक्ति मिलकर ही कुटुम्ब और कुछ कुटुम्ब मिलकर ही उनका समूह ग्राम या नगर बन जाते हैं, इसी प्रकार कुछ ग्राम और नगरोंका प्रान्त, प्रान्तोंका ही राष्ट्र, राष्ट्रोंका ही विश्व बन जाता है। व्यक्तियोंके समूहसे ही जातियाँ, सम्प्रदाय तथा नानाप्रकारकी संस्थाएँ हो जाती हैं। व्यक्तियोंके ही दूषणोंसे जातियाँ, सम्प्रदाय तथा संस्थाएँ दूषित हो जाती हैं। विभिन्न व्यक्तियोंके आन्तरिक दूषणोंसे ही सर्वत्र विघटन फैल जाता है। प्रत्येक प्राणियोंके अन्त:करणमें अनादिकालसे देवासुर-संग्राम चल रहा है। सात्त्विकी, राजसी, तामसी वृत्तियोंका संघर्ष चलता रहता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मान आदि तामसी-राजसी वृत्तियोंका प्राचुर्य, प्राखर्य स्वाभाविक है। शान्ति, दान्ति, उपरति, तितिक्षा, विवेक, वैराग्य आदि सात्त्विकी वृत्तियोंकी न्यूनता स्पष्ट ही है। तामसी, राजसी वृत्तियोंके निवारण और सात्त्विकी वृत्तियोंके विस्तारके लिये शतधा प्रयत्न करते हुए भी सात्त्विक भावोंकी कमी और राजस-तामस भावोंकी प्रखरता रहती है। प्रत्येक प्राणीका अन्तरंग संघर्ष ही बाह्य संघर्षके रूपमें व्यक्त होता है। यदि अन्तरंग शान्ति हो, तो बाहर भी शान्ति अनिवार्य है। जिसका अपने कार्य-करण-संघातपर अधिकार नहीं है, उसका अपने अन्त:करण और उसके काम-क्रोधादि दोषोंपर नियन्त्रण न होनेपर बाहर भी शत्रु बन जाते हैं। जिसकी दृष्टिमें सर्वत्र परिपूर्ण भगवान् भरपूर हैं, **'समे मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः'** वहाँ शत्रु कहाँ? व्यक्तियोंमें ही वैर, वैमनस्य, ईर्ष्या आदि दोषोंके मिट जानेपर क्रमेण जाति, समाज, सम्प्रदाय, संस्था एवं सर्वत्रसे ही विद्वेष, वैमनस्य मिट जाता है, जिससे जातीय, सामाजिक, साम्प्रदायिक, राष्ट्रीय संघटन हो जाता है। आत्म-पर-बुद्धि जिन सर्वान्तरात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान्की मायासे होती है, उन सर्वान्तरात्मा भगवान्के सान्निध्यसे वैर-बुद्धिका नाश हो जाता है। विश्व और विश्वके समस्त प्राणी भगवान्के हैं। समस्त भोग्यवर्ग और समस्त भोक्तृवर्ग भगवान्के ही शरीर हैं। जैसे शरीर और शरीरीका घनिष्ट सम्बन्ध होता है, शरीरके सन्ताप और उद्वेगमें शरीरी सन्तप्त एवं उद्विग्न होता है, वैसे ही समस्त जीवोंके उद्वेग, सन्तापमें भगवान्को भी उद्वेग और सन्ताप होता है। यद्यपि भगवान् अपहतपाप्मा हैं, सुख-दु:ख मोहात्मक प्रपंच और उसके प्राणियोंके सद्गुणों एवं दुर्गुणोंसे संसृष्ट नहीं होते, प्रपंचातीत हैं, प्रपंचके दोषोंसे सर्वथा अतीत हैं तथापि भक्तवत्सलता तथा दीनवत्सलताके नाते भगवान् अवश्य ही भक्तों एवं दीनोंके सन्तापसे सन्तप्त होते हैं। जो नाना प्रकारके अस्त्र, शस्त्र, माया, कर्म, काल सबसे अतीत हैं, वे ही भक्तों तथा दीनोंके तापोंसे सन्तप्त होते हैं। भगवान्के भक्त भी यद्यपि स्वयं शोक-मोहादि दोषोंके अतीत होते हैं तथापि भक्तों तथा दीनोंके परितापमें वे भी सन्तप्त होते हैं—***'संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना। निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवइ संत सुपुनीता॥'*** जैसे अंगके सन्तापमें अंगी सन्तप्त होता है, नेत्रपर आयी हुई विपत्तियोंके प्रतीकार करनेके लिये सर्वांग व्यग्र हो उठते हैं, वैसे ही अपने अंशभूत जीवोंके सन्तापमें भगवान् भी उनके सन्त्राणके लिये व्यग्र हो उठते हैं। देहादि उपाधियाँ तथा जीव सभी सन्मात्र, विशुद्ध ब्रह्ममें ही पर्यवसित हैं। समस्त जीव ही नहीं, अपितु चेतना-चेतनात्मक सभी प्रपंच भगवान्के ही हैं।

सबकी जातीयता, साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीयता आदिका सम्बन्ध मान्य है, तब भगवदीयताका सम्बन्ध क्यों न आदरणीय हो? जब बाह्य सम्बन्ध आदरणीय है, तब परम अन्तरंग, भगवदीयता-सम्बन्ध क्यों उपेक्ष्य हो? जाति, समाज, सम्प्रदाय, राष्ट्रमें सर्वत्र ही विघटनका मूल आन्तर

दोष है। विद्वेष, वैमनस्य, काम, क्रोध आदिसे ही विघटन और विनाश उपस्थित होता है। ये दोष ऐसे हैं कि जिनका प्रतिवाद बाह्य उपायोंसे हो ही नहीं सकता। तोप, बन्दूक, बम—ये सभी आन्तर दोषोंके प्रतीकारमें असमर्थ होते हैं। जैसे बाँबी पीटनेसे सर्पका निग्रह नहीं हो सकता, वैसे ही बाह्य उपचारोंसे आन्तर दोषोंका प्रशमन नहीं हो सकता, परंतु *'मैं अरु मोर तोर तैं माया'* ऐसी विचित्र है कि भगवत्कृपाके बिना उसकी निवृत्ति असम्भव है। यह शरीर अस्थि-मांस-चर्ममय पंजरमूल पुरीषभाण्डागार, अत्यन्त अपवित्र है, काक, गृध्र, श्व, शृगालोंका भक्ष्य है। फिर भी इसकी अहन्ता-ममताका मिटना भगवत्कृपाके बिना असम्भव है। जो प्राणी निश्छल, निष्कपट होकर अपने आपको भगवान्‌के श्रीचरणोंमें समर्पण कर देते हैं, उन्हींपर प्रभुकी कृपा होती है, प्रभुकृपासे मायाका तरण होता है—**'येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः सर्वात्मनाश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम्। ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये॥'** प्रभुके मंगलमय नाम और प्रभुके मंगलमय परमपवित्र चरित्र और उनके स्वरूपका अनुसन्धान ही *'मैं अरु मोर तोर तै'* भावोंका निवर्तक है। **'त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः'** मुझमें, मेरेमें, तुझमें, तेरेमें—सर्वत्र ही भगवान् भरपूर हैं—इस भावनासे आन्तर संघर्ष मिट जानेपर व्यक्तियों, जातियों, सम्प्रदायों तथा राष्ट्रोंके संघर्ष मिट सकेंगे और संसारके सभी प्राणी सुखसे जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

संतवाणी

[परमहंस श्रीरामकृष्णदेवके अमृतवचन]

शहरमें नवीन आये हुए मनुष्यको रात्रिमें विश्राम करनेके लिये पहले सुख देनेवाले एक स्थानको खोज कर लेनी चाहिये और फिर वहाँ अपना सामान रखकर शहरमें घूमने जाना चाहिये, नहीं तो, अँधेरेमें उसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा। उसी प्रकार इस संसारमें आये हुएको पहले अपने विश्राम-स्थानकी खोज कर लेनी चाहिये और इसके पश्चात् फिर दिनका अपना काम करना चाहिये। नहीं तो, जब मृत्युरूपी रात्रि आयेगी तो उसे बहुत-सी अड़चनोंका सामना करना पड़ेगा और मानसिक व्यथा सहनी पड़ेगी।

एक तालाबमें कई घाट होते हैं। कोई भी किसी घाटसे उतरकर तालाबमें स्नान कर सकता है या घड़ा भर सकता है। घाटके लिये लड़ना कि मेरा घाट अच्छा है और तुम्हारा घाट बुरा है, व्यर्थ है। उसी प्रकार दिव्यानन्दके झरनेके पानीतक पहुँचनेके लिये अनेक घाट हैं। संसारके किसी धर्मका सहारा लेकर सच्चाई और उत्साहसे आगे बढ़ो तो तुम वहाँतक पहुँच जाओगे, लेकिन तुम यह न कहो कि मेरा धर्म दूसरोंके धर्मसे अच्छा है।

अगर तुम संसारसे अनासक्त रहना चाहते हो तो तुमको पहले कुछ समयतक—एक वर्ष, छः महीने, एक महीने या कम-से-कम बारह दिनतक किसी एकान्त स्थानमें रहकर भक्तिका साधन अवश्य करना चाहिये। एकान्तवासमें तुम्हें सर्वदा ईश्वरमें ध्यान लगाना चाहिये। उस समय तुम्हारे मनमें यह विचार आना चाहिये कि 'संसारको कोई वस्तु मेरा नहीं है। जिनको मैं अपनी वस्तु समझता हूँ, वे अतिशीघ्र नष्ट हो जायँगी।' वास्तवमें तुम्हारा मित्र ईश्वर है। वही तुम्हारा सर्वस्व है, उसको प्राप्त करना ही तुम्हारा ध्येय होना चाहिये।

जैसे मलिन शीशेमें सूर्यकी किरणोंका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता, उसी प्रकार जिनका अन्तःकरण मलिन और अपवित्र है तथा जो मायाके वशमें हैं, उनके हृदयमें ईश्वरके प्रकाशका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। इसी प्रकार स्वच्छ हृदयमें ईश्वरका प्रतिबिम्ब पड़ता है। इसलिये पवित्र बनो।

भगवान्‌के बनो

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

पहले भगवान्‌के बनिये। भगवान्‌के बननेके बाद आप स्वाभाविक ही भगवान्‌के अनुकूल कार्य करने लगेंगे। भगवान्‌के अनुकूल कौन-से कार्य हैं? जो भगवान्‌को रुचिकर हैं। उनकी रुचि जानिये। रुचि जाननेके बाद क्या होगा कि भगवान्‌के रुचिकर कार्य अपने-आप हमारे मनमें प्रतिध्वनित होने लगेंगे। इसके बाद क्या होगा कि रुचि ही नहीं, भगवान्‌का मन हमारे सामने प्रकट हो जायगा। भगवान्‌के मनमें एक आवरण रहता है। यद्यपि वह आवरण भगवान्‌के मनमें नहीं रहता है बल्कि हमारे मनमें रहता है फिर वह आवरण भंग हो जायगा। भगवान् मुक्त हृदयसे, भगवान् मुक्त मनसे हमारे सामने खड़े हो जायँगे। तब हम देखेंगे कि भगवान्‌के हृदयमें क्या है। उस समय हमसे भगवान्‌की बात छिपी नहीं रहेगी। वह क्या चाहते हैं, इसे हम जान लेंगे।

इस प्रकारकी स्थिति प्रेमराज्यमें प्राप्त होती है। इसीलिये यह सबसे ऊँची बात है। ज्ञान और भक्तिका विरोध नहीं है। दोनोंका तत्त्वत: फल एक ही है, परंतु केवल जहाँ जानकारी है, वहाँ ज्ञान-कार्यमें हृदयकी जानकारी नहीं होती है और जानकारी जब बढ़कर आत्यन्तिक अन्तरंगता होती है, तब हृदयकी बात अपने-आप खुल जाती है। तब असली जानना होता है। इसलिये गीताके श्लोकोंका यह अर्थ है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

(१८।५४)

वह सारे जगत्‌में सभी प्राणियोंको समान देखता है। ब्रह्मभूत है, न सोच करता है, न आकांक्षा करता है, सारे प्राणियोंमें समभावापन्न है। इस प्रकारका जब होता है, तब **'मद्भक्तिं लभते पराम्'** मुझ श्रीकृष्णकी परा भक्ति प्राप्त होती है और उस भक्तिके द्वारा **'भक्त्या माम्'** मुझ श्रीकृष्णको भगवान्‌को जैसा जो कुछ मैं हूँ, वैसा वह जानता है। **यावान्यश्चास्मि**—जैसा मैं हूँ वैसा ही वह तत्त्वसे जानता है। जाननेके बाद—**'विशते तदनन्तरम्'**—मुझमें उसका प्रवेश हो जाता है। दोनों घुलमिलकर एक हो जाते हैं। लीलाराज्यमें उसका अधिकार हो जाता है। वह लीलाराज्यमें जा पहुँचता है और भगवान्‌के साथ मिल जाता है।

यह भगवान्‌के मनकी बात जाननेके लिये क्या होना चाहिये? हमें भगवान्‌के अनुकूल बनना चाहिये। हम भगवान्‌के हो जायँ। उसके बादकी बात यह है कि हम भगवान्‌के अनुकूल आचरण करें। तब जो रही-सही कमी होगी होनेमें, वह अपने-आप पूरी हो जायगी। जबतक हम भगवान्‌के नहीं होते हैं, तभीतक सारे विघ्न हैं। हम भगवान्‌के हो जायँ, तब तो भगवान् अपने-आप रक्षा करते हैं।

त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायमानीकपमूर्धसु प्रभो।

(श्रीमद्भा० १०।२।३३)

ब्रह्माजी गर्भस्तुतिमें कहते हैं—महाराज! आपके द्वारा जो संरक्षित हैं, वे निर्भय विचरते हैं। कैसे विचरते हैं? वे जो विघ्नोंमें सरदार हैं, उनके सिरपर पैर रखकर वह आगे बढ़ते हैं। विघ्नोंसे डरनेकी बात नहीं है। **'त्वयाभिगुप्ता'**—वे आपके द्वारा संरक्षित हैं न। इसलिये विघ्न उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते हैं। वे जहाँ विघ्न देखते हैं, वह सामने आता है तो विघ्नके सिरपर पैर रख देते हैं। विघ्नका सरदार दब जाता है और वे आगे बढ़ जाते हैं, निर्भय होकर।

भगवान्‌के होनेपर साधना तय होती है। साधनामें तभीतक विघ्न है जबतक साधनामें हम अपने पुरुषार्थका, अपने साधनका अभिमान करते हैं। हम कर लेंगे अपने पुरुषार्थके द्वारा, हमारे समान है कौन? जब यह गर्व मनमें आता है तो साधनकी महत्ता नष्ट हो जाती है। उसके स्थानपर अभिमान बढ़ जाता है और भगवान्‌को अभिमान सुहाता नहीं है।

एक बारकी बात है। द्वारकामें भगवान् महलमें आसीन थे। ऐसे दृष्टान्तोंमें यह नहीं मानना चाहिये कि

कहीं श्रीकृष्णका नीचापन और श्रीरामका ऊँचापन है अथवा श्रीरामका नीचापन है और श्रीकृष्णका ऊँचापन है। यह केवल भगवान्‌की दिव्य लीलाएँ हैं, जीवोंके कल्याणके लिये। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकामें विराजमान हैं। सत्यभामाजी कहने लगीं—आप लोग सीताकी बड़ी बातें करते हैं। सीता तो जमीनसे हलके द्वारा उत्पन्न हुईं। भला, उसमें कौन-सा सौन्दर्य होगा? उसमें कौन-सी अच्छी बात होगी? भगवान् मुसकराकर रह गये। वहीं गरुड़जी भी बैठे थे और चक्र सामने खड़े थे। उन लोगोंके गर्वकी बातें बहुत हुई थीं। भगवान्‌ने सोचा कि आज इन सबका गर्व हरण करना है। भगवान् गरुड़से बोले—तुम गन्धमादन पर्वतपर जाओ। वहाँ हनुमान् तप कर रहे हैं। उनसे जाकर कहो कि भगवान् राघवेन्द्र और भगवती सीता दोनों विराजमान हैं और तुम्हें बुला रहे हैं। तुम यदि श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका नाम ले लोगे तो हनुमान् आयेंगे नहीं। उनको रुक्मिणी और कृष्णसे मतलब नहीं है। तुम कहना—भगवान् राघवेन्द्र और सीताजी बैठे हैं और तुम्हें शीघ्र बुला रहे हैं। साथ लेकर आना। बहुत जल्दी। गरुड़ने कहा—अभी लेकर आता हूँ। यह कौन-सी बड़ी बात है। भगवान्‌ने चक्रसे कहा—तुम एक काम करो। हनुमान् आ रहे हैं। हम लोग यहाँ अब राम और सीताके रूपमें रहेंगे। इसलिये कोई बाहरसे आ जाय, यह ठीक नहीं है। चक्र! तुम बाहर पहरा दो। कोई आने न पाये। चक्रने कहा—ठीक है। ऐसा ही होगा। फिर भगवान्‌ने सत्यभामाजीसे कहा—तुम सीता बनो और मैं राम बनकर बैठता हूँ। सत्यभामाजी सीता बनकर बैठीं। नाटककी तैयारी हो गयी। नाटकका स्टेज बन गया। सत्यभामाजी सीता बनीं। भगवान् श्रीकृष्ण भगवान् राघवेन्द्र बने। चक्र पहरेपर बैठे और गरुड़जी हनुमान्‌जीको लाने चले।

जहाँ हनुमान्‌जी बैठे थे, वहाँ गरुड़जी पहुँचे। गरुड़जीकी जो गति है, उसको कहते हैं—मनोगति। उनका जितना मन हो उतनी उनकी गति है। कोई बन्धन नहीं है। गरुड़जीने हनुमान्‌जीसे कहा—महाराज! भगवान् राघवेन्द्र और जगज्जननी सीताजी द्वारकामें विराजमान हैं और आपको शीघ्र बुलाये हैं। हनुमान्‌जीने कहा—ठीक है, आप चलें, मैं आता हूँ। गरुड़जीने कहा—नहीं, शीघ्र बुलाये हैं। फिर हनुमान्‌जीने कहा—आप जायँ, मैं आता हूँ। गरुड़जीने कहा—नहीं, आप चलें। वे शीघ्र बुलाये हैं। तब हनुमान्‌जीने गरुड़के पंख पकड़कर फेंके तो वे समुद्रमें जाकर गिरे। फिर किसी तरह पंख फड़-फड़ाकर निकले। उधर हनुमान्‌जी चले और जब महलके द्वारपर पहुँचे तो वहाँ चक्र महाराज पहरा दे रहे थे। उन्होंने रोका! तब हनुमान्‌जीने कहा—मुझे जाने दें। मुझे भगवान् राघवेन्द्रने बुलाया है। उनके दरबारमें मेरा कभी प्रवेश-निषेध है ही नहीं। जहाँ राघवेन्द्र हैं, वहाँ मैं निर्बाध जा सकता हूँ। चक्रने कहा—मुझे किसीको अन्दर न जाने देनेकी आज्ञा है। तब हनुमान्‌जीने चक्रको उठाकर मुँहमें दबा लिया और अन्दर पहुँचे। इतनेमें देखा भगवान् राघवेन्द्र बैठे हैं। उन्हें प्रणाम किया। सीताजी पहचानमें नहीं आयीं। तब हनुमान्‌जीने कहा—सरकार! आज यह नयी बात कैसे है? आपने माँ जगज्जननीके बदले किस दासीको बैठा लिया है? इसमें तो कोई सौन्दर्य है ही नहीं। कहाँ जगज्जननी माता सीता और कहाँ यह? तब सत्यभामाजीका सिर नीचा हो गया। इतनेमें गरुड़जी अपने पंखोंको हिलाते हुए आये। उन्होंने देखा कि हनुमान्‌जी बैठे हैं। तब उनसे पूछा—आप पहले आ गये। हनुमान्‌जीने कहा—मैंने तो कहा था। आ रहा हूँ शीघ्र। अब गरुड़जीको जो गतिका अभिमान था, वह नष्ट हो गया। भगवान्‌ने कहा—हनुमान्! तुम आये कैसे? पहरेदारने रोका नहीं? हनुमान्‌जीने कहा—प्रभो! आपके दरबारमें क्या कोई हनुमान्‌को रोक सकता है? तब हनुमान्‌जीने मुँहमेंसे चक्रको बाहर निकाला। इस प्रकार भगवान्‌ने तीनोंके गर्वका छालन कर दिया। भगवान्‌ने सत्यभामासे कहा—अब अपने रूपमें आओ। फिर हनुमान्‌जीने उन्हें प्रणाम करके प्रस्थान किया।

भगवान्‌ने सत्यभामासे कहा कि तुम सीताकी निन्दा किया करती थी। उन्होंने कहा—महाराज! आज मालूम

हो गया। चक्रसे कहा—तुम्हें अपने बलका बड़ा अभिमान था। उन्होंने कहा—सरकार! था तो परंतु आज सारा गर्व चूर हो गया। भगवान्‌ने गरुड़से कहा—तुम्हें अपनी चालपर बड़ा गर्व था। तुम्हें ऐसा लगता था कि तुम्हारे समान चलनेवाला कोई नहीं है। गरुड़ने कहा—महाराज! ऐसा मैं भी मानता था, परंतु आज वह गर्व चूर हो गया। भगवान्‌का एक नाम गर्वापहारी है।

जब साधक अपने साधनपर गर्व करता है। जब वह कहता है कि मैं अपने साधनसे प्राप्त कर लूँगा। तब वह चाहे ऊपर उठ गया हो परंतु ऐसे गिरता है कि उसे पता ही नहीं चलता।

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे॥

(रा०च०मा० ७। १३। छंद ३)

वेद कहते हैं—हे नाथ! जो ज्ञानके अभिमानमें मतवाले हैं, सम्भव है कि वे अपने तपके द्वारा ***'सुर दुर्लभ पदादपि'***—देवताओंको दुर्लभ पदार्थ भी प्राप्त कर लें परंतु—***'परत हम देखत हरी'***—हम देखते हैं कि वे गिर जाते हैं और जो आपकी कृपापर विश्वास करे, सारी आशाओंको छोड़ दे और आपका दास हो जाय वह केवल आपका नाम लेकर सहजमें तर जाता है।

इसलिये जब हम भगवान्‌के हो जायँगे, तब भगवान्‌की रक्षा हमें प्राप्त हो जायगी। भगवान् अपनी रक्षामें हमें ले लेंगे। जहाँ कहीं भी त्रुटि होगी, उसे भगवान् दूर कर देंगे। कोई साधारण व्यक्ति यदि सरकारका अफसर हो जाय तो वह साधारण कहाँ रहा। सरकार उसके साथ हो गयी। गरीब-से-गरीब घरकी लड़की यदि राजाकी रानी हो जाय तो वह गरीब घरकी नहीं रहती। थी वह गरीब घरकी, परंतु आज तो वह राजरानी है। इसी प्रकार जब हम भगवान्‌के हो जाते हैं तब भगवान्‌की रक्षामें आ जाते हैं।

गीताके दूसरे अध्यायमें भगवान्‌ने एक ही जगह कहा—**मत्परः**।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(गीता २। ६१)

एक बार इन्द्रियोंको रोककर और मेरे बनकर कह जाओ। फिर अपने-आप मैं रक्षा करूँगा। **मत्परः**—भगवान्‌के परायण हो जाओ। भगवान्‌के परायण हो जानेपर भगवान्‌पर निर्भर करनेपर, अपने-आपको भगवान्‌का दास बना लेनेपर सब तरहसे भगवान् उसकी रक्षा करते हैं। उसको फिर संसारके वस्तुओंकी परवाह नहीं होती है। वह चाहता नहीं है। यदि भगवान् देते हैं तो कोई ले लेता है और कोई उसे अस्वीकार कर देता है।

'बंदौ चरन सरोज तिहारे'

बंदौ चरन-सरोज तिहारे।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान-पियारे॥
जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु-सुता उर तैं नहिं टारे।
जे पद-पदुम तात-रिस-त्रासत, मन-बच-क्रम प्रहलाद सँभारे॥
जे पद-पदुम-परस जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत अघ भारे।
जे पद-पदुम-परस रिषि-पतिनी, बलि, नृग, ब्याध, पतित बहु तारे॥
जे पद-पदुम रमत बृंदाबन अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे।
जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनी सरबस दै, सुत-सदन बिसारे॥
जे पद-पदुम रमत पांडव-दल, दूत भए, सब काज सँवारे।
सूरदास तेई पद-पंकज, त्रिबिध-ताप-दुख-हरन हमारे॥

[भक्त सूरदास]

मन्त्र-चैतन्य

(संत श्रीभूपेन्द्रनाथजी सान्याल)

'मननात् त्रायते यस्मात्तस्मान्मन्त्र इति स्मृतः।' जिसके जप-मननसे परित्राण प्राप्त हो, वह मन्त्र है। इष्टदेवता मन्त्रका ही प्रतिपाद्य विषय है। अतः इष्टदेवता और मन्त्र एक ही वस्तु हैं। गुरुपर विश्वासकर उनके प्रति किया जानेवाला प्रेम और भक्ति ही मन्त्रको जीवन-दान देनेवाली शक्ति है। इन तीनोंको सर्वथा भिन्न समझकर साधन करनेवाला कभी सिद्धिकी ओर अग्रसर नहीं हो सकता। अग्नि, जल और चावल—इनमेंसे एकको भी बाद देनेपर (अलग कर देनेपर) भात नहीं बन सकता। वास्तवमें मन्त्र, गुरु और इष्टदेवता—ये तीनों एक हैं या एकहीकी ये तीन अवस्थाएँ हैं। इसीलिये मन्त्र-चैतन्य चाहनेवालेको सर्वथा इन तीनोंमें एकत्वकी भावना करनी पड़ती है। यदि गुरुपर दृढ़ भक्ति और विश्वास न हो, मन्त्र-जपसे यदि इष्टकी स्फूर्ति न हो और इष्टदेवताके प्रति अपना उद्धार करनेमें समर्थ होनेकी धारणा न हो तो मन्त्र-जप निष्फल और केवल व्यर्थ श्रम ही है।

मन्त्र उद्धार करता है। जो उद्धारकर्ता हैं, वे ही उद्धारका उपाय भी बतलाते हैं—वे ही गुरु हैं। इस प्रकार मन्त्रदाता गुरु और मन्त्र भी एक ही है। यह ज्ञान होना चाहिये। यह ज्ञान ही मन्त्रमें शक्तिका संचार करता है। जब ये बातें भलीभाँति अनुभवगम्य होती हैं, तब मन्त्र-चैतन्य होता है। मन्त्र-चैतन्य न कर सकनेपर केवल जपसे कोई विशेष आध्यात्मिक उपकार नहीं होता। इस विषयपर कुछ विस्तारसे विचार करना चाहिये। मान लीजिये कि एक दरिद्र मनुष्य किसी दूसरे मनुष्यसे कुछ भीख माँगता है, वह उससे क्यों माँगता है? इसीलिये कि उसके मनमें यह विश्वास है कि इससे माँगनेपर मुझे कुछ मिलेगा। यदि उसकी यह धारणा होती कि यहाँ कुछ भी नहीं मिलेगा या उसे यह विश्वास रहता कि इसमें देनेकी सामर्थ्य नहीं है तो वह यह व्यर्थ परिश्रम कभी न करता, अर्थात् उसके सामने अपने अभावकी बात कभी नहीं कहता। यही बात मन्त्र-जपके सम्बन्धमें है। इसीलिये मन्त्र-जपके साथ प्रति बार दृढ़चित्तसे यह धारणा करनी चाहिये कि मैं इष्टदेवताको अपनी अनन्य प्रार्थना सुना रहा हूँ और वे उसे सुन रहे हैं एवं कृपाके वश होकर मेरी ओर प्रसन्न दृष्टिसे निहार रहे हैं। वे मेरे उद्धारके लिये और मेरा सन्तप्त चित्त शीतल करनेके लिये वराभयहस्त हो कृपादृष्टिसे मेरी ओर देखते हुए मुझे अभयदान दे रहे हैं। इस भाव और दृढ़ताके साथ जप न करनेपर या 'मन्त्रदाता गुरुकी शक्ति ही इष्टकी स्फुरणामें मेरी एकमात्र सहायक है'—यह धारणा न करनेपर जपका कोई विशेष फल प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकार मृतशरीरको आलिंगन करनेपर कोई लाभ या सुख नहीं मिलता, उसी प्रकार गुरु या मन्त्रपर विश्वास नहीं होनेसे मन्त्र साधारण अक्षरोंमें परिणत हो जाता है और वैसा जप कोई फल उत्पन्न नहीं कर सकता।' उदाहरणके तौरपर एक मन्त्रपर ही विचार करें—जैसे 'ह्रीं' एक बीज-मन्त्र है। इसमें ह्-र्-ई और अनुस्वार—ये चार हैं। ह्=महादेवी, र्=वह्निबीज या प्रकृति, ई=महामाया और अनुस्वार=दुःखहरण है। (मन्त्रमहोदधि) जिस प्रकार अग्निकी ज्योति सबको प्रकाशित करती और सबका नाश करती है, उसी प्रकार जो महादेवी इस जगत्की सृष्टि-स्थिति और ध्वंस-विधान करती हैं एवं जिन महाशक्ति या महामायासे तीनों (स्थूल, सूक्ष्म, कारण अथवा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति) शरीरोंकी उत्पत्ति, स्थिति और ध्वंस होता है, वे ही मेरा संसार-ताप दूर करें या मेरे भव-बन्धनका नाश करें।

अपने प्राणोंकी यह गम्भीर वेदना मैं किसको सुना रहा हूँ? क्या एक कल्पित मूर्ति या जड़-विग्रहको? नहीं, गुणातीत ब्रह्मकी जो असीम शक्ति चराचर जगद्रूपमें मूर्तिमती है, जो महाशक्ति सृष्टि, स्थिति और प्रलय

करनेवाली है, जो सौन्दर्य और माधुर्यकी नित्य नवीन निर्झरिणी है, मेरी माताके अन्दर वात्सल्यरसपूर्ण मातृ-स्नेहको लेकर जिसने मेरी माँके वेशमें मुझे दर्शन दिया है, जिसके स्तन्य-अमृतका पानकर मेरा शिशु-जीवन परिपुष्ट हुआ है, जिसने करुणापूर्ण दृष्टिसे मुझे गोदमें लेकर बार-बार मेरा मुँह चूमा और अकुण्ठित-चित्तसे मेरे लिये सारे क्लेशों और त्यागको स्वीकार किया है, मेरी माँके हृदयमें जिन जगन्माताने ही मातृशक्तिको स्फुरितकर माँके रूपमें उसको जगत्‌में भेज दिया है, उसी जगन्मातासे ही पृथ्वी बनी है—

आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतःस्थितासि।

उसीने इस जगत्‌के रूपमें मुझे बैठनेको, खड़े होनेको, विश्राम करनेको, काम करनेको और तपस्या करनेको स्थान दिया है। पृथिवीसे उत्पन्न असंख्य रसोंके रूपमें, वृक्ष-लता और ओषधियोंके रूपमें एवं विविध अन्नोंके रूपमें मुझे वह कितनी तृप्ति प्रदान कर रही है! पितामें पालनी-शक्तिके रूपमें और बीजरूपमें, भाई-बहनोंमें सख्य, सौहार्द और स्नेह प्रभृति सम्पदाओंके रूपमें वही प्रकट हुई है। वही गुरुमें मोह-नाशिनी त्राण-शक्तिके रूपमें प्रकाशित हुई है। जिसके अभय-चरण-सरोजोंसे निकल-निकलकर मुक्ति-शोभा सैकड़ों दिशाओंमें बिखर रही है, तीनों लोकोंके सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी जो मूल-कारणरूपा है, जिसके स्नेहका एक कण पाकर माता स्नेहमयी, करुणामयी और सन्तान-वात्सल्यमयी हुई है, वही करोड़ों चन्द्रोंकी ज्योति-सुधाको विलज्जित करनेवाली, हँसीके प्रकाशसे गगनमण्डलमें करोड़ों चन्द्र-सूर्योंकी किरणोंका विकास करनेवाली, देवता-मनुष्य आदि जीवोंके हृदयमें ज्ञान-भक्तिकी ज्योतिस्वरूपिणी, ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि महान् देव जिसके इशारेसे जलमें बुद्‌बुदकी भाँति प्रतिक्षण उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। वही दयामयी माँ, भक्तकी जीवन-सर्वस्व माँ सबकी सदा-सर्वस्व माँ मेरे सम्मुख खड़ी होकर मेरी करुण-प्रार्थना सुन रही है एवं स्मित-प्रसन्न-मुखसे अभयदान दे रही है। फिर क्या भय है? उसके चरण-सरोजकी महामहिमासे मेरे सारे पाप, मेरी सारी मलिन वासनाएँ नष्ट हो रही हैं। उसकी हास्य-सुधासे सारा अज्ञान नाश होकर एक दिव्य शान्ति-ज्योति विस्तृत हो दिग्-दिगन्तको शान्ति-शोभासे मनोहर कर रही है। हमारे सम्पूर्ण अज्ञान, मोह, भ्रान्ति उस चैतन्य-ज्योतिमें विलीन हो रहे हैं। इस प्रकारकी दृढ़ धारणासे तुम माँके सामने अपने मनकी बात, मनकी इच्छा निवेदन करते हो और माँ तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हो तुम्हारी प्रार्थना सुन रही है और हँस-हँसकर कितने स्नेह, कितने प्यारसे, कैसी सान्त्वना-भरी बातें सुना रही है; उसके मुखकी प्रफुल्ल, निर्मल ज्योति तुम्हें कितना अभयदान दे रही है। ठीक इसी भाँति, हृदयमें ठीक इन्हीं भावोंको लेकर जप करनेपर मन्त्र-चैतन्य होगा। मन्त्र-जपमें प्रत्येक बार इसी भावसे चिन्तन करना होगा। 'माँ'को इसी भावसे देखना पड़ेगा, तभी मन्त्र-जप सफल होगा। इसी प्रकारके जपसे हृदय भक्तिसे द्रवित और विह्वल हो जायगा। तुम भी माँकी अभयवाणी सुनकर जन्म-जीवन सफल कर सकोगे। तुम भव-बन्धन-मुक्त हो जाओगे, मुक्तिके आनन्द-प्रवाहमें बहने लगोगे। इस भावसे जप करनेवाले ही मन्त्र-चैतन्यको प्राप्त करते हैं। माँकी कृपासे जापक जन्म, जरा और मोहके जालसे सदाके लिये छूटकर अन्तमें माँके अभय-पद-पद्मोंमें पूर्ण निर्वाण पाते हैं।

जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात् । मनो दग्धं परस्त्रीभिः कार्यसिद्धिः कथं भवेत्॥

(कुलार्णवतन्त्र १५।७७)

'दूसरेका अन्न खानेसे जिसकी जीभ जल चुकी है, दूसरेसे दान लेनेसे जिसके हाथ जल चुके हैं और दूसरेकी स्त्रीका चिन्तन करनेसे जिसका मन जल चुका है, उसे सिद्धि कैसे मिल सकती है?'

साधकोंके प्रति—

[सर्वभूतहिते रताः]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें मुख्य बाधा है—संयोगजन्य सुखकी आसक्ति, प्रियता। जितने भी संयोगजन्य सुख हैं, वे केवल दुःखोंके कारण हैं—**'ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते'** (गीता ५।२२)। संयोगजन्य सुखकी आसक्तिसे ही संसारके दुःख पैदा होते हैं। अगर संयोगजन्य सुखकी इच्छा न हो तो दुःख कभी हो ही नहीं सकता। किसी चीजके अभावसे दुःख नहीं होता, प्रत्युत सुखकी इच्छासे ही दुःख होता है। अगर संयोगजन्य सुखकी इच्छा मिट जाय तो 'योग' हो जायगा। संयोगजन्य सुखसे अतीत जो महान् सुख है, जिसमें दुःखोंके संयोगका सर्वथा वियोग है, उसको 'योग' कहते हैं—**'तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्'** (गीता ६।२३)। सम्बन्धजन्य सुखका भीतरसे ही त्याग हो जाय अर्थात् उसकी इच्छाका, वासनाका, आशाका, तृष्णाका त्याग हो जाय तो उस योगकी सिद्धि स्वतः हो जायगी।

पतंजलि महाराजने कहा है कि चित्तकी सम्पूर्ण वृत्तियोंके निरोधका नाम 'योग' है—**'योगश्चित्त-वृत्तिनिरोधः'** (योगदर्शन १।२)। वह योग सविकल्प भी होता है और निर्विकल्प भी होता है। चित्तकी एकाग्र-भूमिमें भी योग होता है और निरुद्ध-भूमिमें भी होता है। निर्विकल्प योग, निरुद्धभूमिका योग असली होता है। इससे पहले चित्तकी पाँच भूमिकाएँ हैं—मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। जब निरुद्ध-भूमिमें योग होता है, तब द्रष्टाकी स्वरूपमें स्थिति होती है—**'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** (योगदर्शन १।३)। इस तरह पतंजलि महाराजने योगका जो फल बताया है, उसीको गीता योग कहती है। गीताने समताको 'योग' कहा है—**'समत्वं योग उच्यते'** (२।४८)। समता क्या है? **'निर्दोषं हि समं ब्रह्म'** (५।१९)। समता नाम ब्रह्मका है। जो निर्दोष और सम है, उसको ब्रह्म कहते हैं। उस ब्रह्ममें स्थितिको गीता 'योग' कहती है। ब्रह्ममें स्थिति कैसे हो? दुःखोंके संयोगका वियोग हो जाय (६।२३)। दुःखोंके संयोगका वियोग कैसे हो? संयोगजन्य सुखकी इच्छाका त्याग हो जाय।

गीताका योग नित्ययोग है; क्योंकि परमात्माके साथ नित्य सम्बन्ध है, अखण्ड सम्बन्ध है। चित्तकी वृत्तियोंके निरोधका जो योग है, वह नित्ययोग नहीं है। वह योग तो तबतक है, जबतक वृत्तियाँ निरुद्ध हैं। वृत्ति बाह्य हो जायगी तो उस योगसे व्युत्थान हो जायगा। समाधि और व्युत्थान—ये दो अवस्थाएँ होंगी, परंतु जब दुःखोंके संयोगका वियोग हो जायगा, तब दो अवस्थाएँ नहीं होंगी, प्रत्युत सदाके लिये अखण्ड योग हो जायगा।

विचार करें, चित्तवृत्तियोंका निरोध करनेसे परमात्मतत्त्वमें जो स्थिति होती है, वह क्या निरोध करनेसे पहले नहीं है? जबतक चित्तवृत्तियोंका निरोध नहीं होता, तबतक परमात्मा नहीं है क्या? परमात्मा तो चंचल-से-चंचल वृत्तिमें भी हैं। वे मूढ़ वृत्तिमें भी हैं और क्षिप्त-वृत्तिमें भी हैं। वे परमात्मा सब देशमें, सब कालमें, सम्पूर्ण वस्तुओंमें, सम्पूर्ण व्यक्तियोंमें, सम्पूर्ण घटनाओंमें, सम्पूर्ण परिस्थितियोंमें हैं। केवल संयोगजन्य सुखसे विमुख होते ही उनका अनुभव हो जाता है। जबतक संयोगजन्य सुखकी इच्छा रहेगी, वासना रहेगी, तबतक हमारी वृत्ति जड़ताकी तरफ रहेगी, हमारे भीतर जड़ताका महत्त्व रहेगा। जड़ताका महत्त्व रहनेसे चिन्मय-तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होगी, नित्य-प्राप्त परमात्माका अनुभव नहीं होगा। जब संयोगजन्य सुखसे बिलकुल उपरत हो जायँगे, तब वह योग सिद्ध हो जायगा अर्थात् परमात्मतत्त्वका अनुभव हो जायगा।

संयोगजन्य सुखसे उपरत कैसे हों? इसके लिये गीताने बताया कि सब काम दूसरोंके लिये करे, अपने लिये कुछ नहीं, और तो दूर रहा, जप-ध्यान भी अपने लिये नहीं, समाधि भी अपने लिये नहीं। कारण कि शरीरकी, इन्द्रियोंकी, मन-बुद्धिकी, अहंकी सजातीयता

संसारके साथ है, अपने स्वरूपके साथ नहीं। अत: शरीर आदिके द्वारा अपना हित चाहना गलती है। ये तो संसारके हैं और इनको संसारकी ही सेवामें लगा देना है। हमारे पास जो कुछ है, वह सब संसारसे मिला है और संसारसे मिला हुआ होनेपर भी संसारसे अभिन्न है। आप शरीरको अपना मानते हो, पर अपना माननेपर भी शरीर आपका हुआ नहीं है। वह तो संसारका ही है। शरीरकी संसारके साथ अभिन्नता है, अत: इसको संसारकी सेवामें लगा देना है। आपकी अभिन्नता परमात्माके साथ है, अत: अपने-आपको परमात्मामें लगा देना है। शरीरको संसारकी सेवामें लगाना 'कर्मयोग' हो गया, अपनेको शरीर—संसारसे अलग मानना 'ज्ञानयोग' हो गया और अपनेको परमात्मामें लगाना 'भक्तियोग' हो गया।

केवल संसारकी इच्छा छोड़ देनेसे संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। हम संसारसे कुछ नहीं चाहते तो उसके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं रहता; क्योंकि संसारके साथ हमारा सम्बन्ध है ही नहीं। सुखकी चाहनासे ही संसारसे सम्बन्ध जुड़ता है और सुखकी चाहना मिटनेसे स्वत: सम्बन्ध टूट जाता है। अत: सुख लेनेकी चीज नहीं है, प्रत्युत देनेकी चीज है। हम सुख लेनेके लिये संसारमें आये ही नहीं। केवल सुख देनेके लिये, सेवा करनेके लिये यहाँ आये हैं। इसलिये सबको सुख कैसे हो? सबका हित कैसे हो? सबकी सेवा कैसे बने?— ऐसी लगन लग जाय। जैसे लोभीको रुपयोंकी लगन लगती है, कामीको स्त्रीकी लगन लगती है, मोहीको परिवारकी लगन लगती है, विद्यार्थीको विद्याध्ययनकी लगन लगती है, ऐसे ही लगन लग जाय कि सब लोग सुखी कैसे हों? सबको आराम कैसे मिले? प्राणिमात्रके हितमें रति, प्रीति हो जाय—'**सर्वभूतहिते रता:**' (गीता ५।२५, १२।४)। सबके हितमें रति होनेसे अपने सुखभोगकी इच्छा नहीं रहेगी।

जबतक संयोगजन्य सुखकी इच्छा रहती है, तबतक मनुष्य परमात्मासे बिलकुल विमुख रहता है। कारण कि संयोगजन्य सुख प्रकृतिका है और उत्पत्ति-विनाशशील है। इससे उपराम होनेपर परमात्माका सुख मिलता है। इसलिये प्राणिमात्रके हितमें प्रीति होनी चाहिये। सबका हित एक आदमी कर सकता है क्या? सब मिलकर एक आदमीकी भी इच्छापूर्ति नहीं कर सकते, तो फिर एक आदमी सबकी इच्छापूर्ति कैसे करेगा? वास्तवमें इच्छापूर्तिसे मतलब नहीं है। समय, सामग्री, सामर्थ्य आदि जो कुछ हमारे पास है, उसको दूसरोंके हितमें लगानेके लिये निरन्तर प्रस्तुत रहे, हरदम तैयार रहे। इससे हमारे पास जितनी चीजें हैं, उनका प्रवाह संसारकी तरफ हो जायगा और हमारा प्रवाह जड़तासे हटकर चिन्मयताकी तरफ हो जायगा तो परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जायगी।

प्रलयंकरके प्रति

(आचार्य श्रीरसिकविहारीजी मंजुल)

नेति नेति हे निरपेक्षित-नीतों के नायक।
कुसुमायुध-रिपु हे त्रिनेत्र, हे साधु-सहायक॥
सृजक विधाता, विष्णुरूप हो संसृति-पालक।
रुद्र-रूपसे विकट प्रलयके हो संचालक॥
परम-ज्ञान-भंडार, भक्तिमय हे भूतेश्वर।
नृत्य तुम्हारा होता ताण्डव-तुङ्ग-भयंकर॥
तुम्हीं नित्य हो, तुम्हीं सत्य हो, हे जगदीश्वर।
नीलकण्ठ! तुमको प्रणाम शत-शत उर के कर॥

रुद्र-कुद्ध, हे दक्ष-यज्ञ-विध्वंस-विधायक।
ब्रह्मचर्य-पद हे अखण्ड, हे ब्रह्म-सहायक॥
हे उदार योगीश्वर! हे उन्मुक्त शेषधर।
दग्ध-ताप-जग-मध्य तुम्हीं हो परम शान्तिकर॥
दया करो, स्वीकार करो अन्तरतमके स्वर।
क्षमा करो, धो दो त्रिताप, हे पाप-ताप हर!॥
कृपादृष्टि कर दो, वर दो, हर लो दुख सत्वर।
अखिल-अमर-कर-बन्ध देव देवाधिदेव हर॥

भगवान्‌में मन कैसे लगे ?

(श्रीभँवरलालजी परिहार)

एक जिज्ञासु अपनी समस्याके समाधानके लिये एक सन्तके पास गया। उसने सन्तसे कहा कि भगवान्‌में मन नहीं लगता है, मन लगानेका कोई उपाय बतायें। सन्तने हँसते हुए पूछा कि रुपये गिननेमें मन लगता है या नहीं? जिज्ञासुने उत्तर दिया—हाँ, बहुत लगता है। सन्तने पुनः प्रश्न किया—क्यों लगता है? जिज्ञासुने उत्तर दिया—हमें रुपयोंकी बहुत आवश्यकता है, अतः रुपये अच्छे लगते हैं और उनमें मन भी लगता है। सन्तने कहा कि तुम्हारे प्रश्नका उत्तर तुमने ही दे दिया है। भगवान्‌में मन नहीं लगता है; क्योंकि हमें भगवान्‌की कोई आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती। जिस दिन भगवान्‌की वास्तविक आवश्यकता अनुभव होगी, उस दिन वे स्वतः ही अच्छे लगने लगेंगे और मन अपने-आप उनकी ओर दौड़ेगा, लगाना नहीं पड़ेगा।

यह एक सामान्य सच्ची घटना है; किंतु हमारी सम्पूर्ण समस्याओंका मूल इसीमें छिपा हुआ है। हमारे दुर्भाग्य, दैन्य तथा समस्याओंका मूल कारण यही है कि आज हमें भगवान्‌की कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है। सांसारिक चकाचौंध तथा भोगोंके चाकचिक्यसे हम इतने अधिक मूढ़ हो गये हैं कि हमें सांसारिक सुख ही अपने जीवनका लक्ष्य मालूम पड़ने लगा है। विद्वान्-मूर्ख, गरीब-धनवान् सभी मुट्ठी बाँधकर इसी ओर अन्धी दौड़ लगा रहे हैं। भगवान्‌की बात करनेवालेको बेवकूफ, अज्ञानी, दकियानूसी समझा जाने लगा है। जो केवल श्रद्धा और विश्वाससे अनुभवगम्य है **'भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ'** उसको विज्ञान तथा तर्ककी कसौटीपर कसनेका बालिश प्रयास करते हैं। वह परमतत्त्व विज्ञान या तर्कसे कभी भी जाननेमें नहीं आ सकता; क्योंकि तर्ककी तो प्रतिष्ठा ही नहीं है—**'तर्काप्रतिष्ठानात्'** (ब्रह्मसूत्र २। १। ११)। कठोपनिषद्‌में कहा गया है—**'नैषा तर्केण मतिरापनेया'** (१। २। ९) 'बुद्धिके तर्कसे उस तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती।' अस्तु,

यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो पता चलेगा कि हमारा मन अधिकांश समय व्यर्थ चिन्तन करता रहता है, जिससे हमें या दूसरोंको कुछ भी लाभ नहीं होता। वास्तविक बात यह है कि मन जिस वस्तुको ग्रहण करेगा, वह उसीका चिन्तन करेगा। हमारा अमूल्य समय व्यर्थकी चर्चा, अनावश्यक पुस्तकों, साहित्य, केवल जगत्‌की चर्चासे ही चलनेवाले समाचारपत्रों, टेलीविजन, इण्टरनेट, मोबाइल आदिमें बरबाद हो जाता है। फिर भगवान्‌की याद कहाँसे आयेगी और कैसे उनमें मन लगेगा? हमें यह सावधानी रखनी होगी कि हमारा मन अधिक-से-अधिक भगवत्सम्बन्धी विषयको ही ग्रहण करे। कहा गया है कि जिस शास्त्रमें हरिभक्तिका दर्शन नहीं होता, स्वयं ब्रह्मा कहे तो भी उसका श्रवण नहीं करना चाहिये—

यस्मिन् शास्त्रे पुराणे वा हरिभक्तिर्न दृश्यते।
श्रोतव्यं नैव तच्छास्त्रं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्॥

मन संसारमें जाता है; क्योंकि मन संसारकी जातिका है। इसमें इसका दोष ही क्या है; किंतु हम तो भगवान्‌की जातिके हैं, हम संसारको पसन्द क्यों करते हैं? यदि हम संसारको पसन्द करना छोड़कर भगवान्‌को ही पसंद करेंगे तो मन स्वतः हमारे पीछे-पीछे चलने लगेगा अर्थात् सुगमतापूर्वक भगवान्‌में लग जायगा।

भगवान्‌में मन ठीक-ठीक तब लगेगा, जब वह भगवान्‌में आसक्त हो जायगा। भगवान्‌में मन आसक्त होनेसे हम उनको समग्ररूपसे जान लेंगे। मनको भगवान्‌में आसक्त करनेके लिये उनके साथ हमारे अनादिकालीन अनन्य सम्बन्ध तथा उनके अतुलनीय, अनन्त प्रभाव, दिव्य सौन्दर्य, माधुर्य, अपरिसीम करुणा, कृपा, भक्तवत्सलता आदि गुणोंको यथातथ्य सम्यक्‌रूपसे जानने, समझनेकी आवश्यकता है। भगवान्‌ने गीतामें अपने अपरिमेय प्रभाव, गुण, तत्त्व, रहस्यको खोलकर रख दिया है।

इनका जितना अधिक पठन-मनन-चिन्तन होगा, उतना ही मन भगवान्‌में आसक्त होगा। श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानस भगवत्प्रेम, ज्ञान, वैराग्यके अगाध सागर हैं। हम इनमें जितनी अधिक डुबकी लगायेंगे, उतने ही अमूल्य रत्न हमें मिलेंगे।

घरमें रहते हुए भी साधनाके लिये एकान्तमें अलग समय निकालनेकी आवश्यकता है। '**विविक्तदेशसेवित्व-मरतिर्जनसंसदि**' (गीता १३। १०) एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव तथा विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें प्रेमका न होना यह साधकका खास लक्षण है। एकान्तमें श्रीभगवान्‌के दिव्य सौन्दर्य-माधुर्य-कारुण्य आदि गुणगणोंसे सम्पन्न श्रीविग्रहका ध्यान करनेसे मन उनमें आसक्त होता जाता है। उनकी सौन्दर्य-सुधा-माधुरीमें मनको जितना अधिक डुबायेंगे, उनसे उतना ही तादात्म्य बढ़ता जायगा। भगवान्‌का ध्यान करते समय मनमें दृढ़ भावना करनी चाहिये कि यहाँ मेरे सामने भगवान् साकाररूपसे उपस्थित हैं और मुझको देख रहे हैं तथा मेरे मनमें उठनेवाली प्रत्येक बातको वे सुन भी रहे हैं। उनसे बातें करते-करते प्रेममें मग्न हो जाना चाहिये। उनके अमृतसने दिव्य सौन्दर्यका आस्वाद कितना मधुर है!

अनवधिकातिशयसौन्दर्यहृताशेषमनोदृष्टिवृत्ति! स्वलावण्यामृतपूरिताशेषचराचरभूतसंजात! अत्यद्भुता-चिन्त्ययौवन! पुष्पहाससुकुमार! पुण्यगन्धवासितानन्त-दिगन्तराल! त्रैलोक्याक्रमणं प्रवृत्तगम्भीरभाव! करुणानुरागमधुरं लोचनावलोकिताश्रितवर्ग!

'नाथ! आप अपने असीम एवं उत्कृष्ट सौन्दर्यसे सबके मन और नेत्रोंकी वृत्तिको छीन लेते हैं, अपनी लावण्य-सुधासे आप सम्पूर्ण चराचर भूतोंको परितृप्त कर देते हैं। आपके चिरस्थायी यौवनकी छटा बड़ी ही विलक्षण और अचिन्त्य है, आप पुष्पोंकी हँसीसे भी अधिक सुकुमार हैं, आप अपनी पवित्र अंगगन्धसे सम्पूर्ण दिशाओंके मण्डलको सुगन्धित कर देते हैं, आपका गम्भीर मनोभाव त्रिलोकीको व्याप्त करने लगता है और आप अपने आश्रितजनोंको करुणा एवं स्नेहभरे कटाक्षोंसे निहारते रहते हैं।'

जब वे त्रिभंगीरूपसे खड़े होते हैं, तब कितने प्यारे लगते हैं। हमारा मन दूसरी ओर जा ही नहीं सकता—

माथे पै मुकुट देखि, चन्द्रिका चटक देखि,
छबिकी लटक देखि, रूप-रस पीजिये।
लोचन बिसाल देखि, गले गुंज-माल देखि,
अधर रसाल देखि चित्त-चाव कीजिये॥
कुंडल हलनि देखि, अलक बलनि देखि,
पलक चलनि देखि सर्बस दीजिये।
पीताम्बरकी छोर देखि, मुरलीकी ओर देखि,
साँवरेकी ओर तो देखिबो ही कीजिये॥

भगवान्‌का एक-एक दिव्य गुण हमारे मनको सर्वतोभावेन आकृष्ट करनेके लिये पर्याप्त है। सम्पूर्ण संसार लक्ष्मीके लिये पागल है; किंतु स्वयं लक्ष्मीजी भगवान्‌के पीछे पागल हैं। ऐसे प्रभुको छोड़कर हम संसारका सुख चाहते हैं, यह हमारा कैसा अज्ञान है? गोस्वामीजी महाराजने लिखा है—

जाकें बिलोकत लोकप होत, बिसोक लहैं सुरलोग सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता, करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि॥
ताको कहाइ, कहै तुलसी, तूँ लजाहि न मागत कूकुर-कौरहि।
जानकी-जीवनको जनु ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाचत औरहि॥

(कवितावली उत्तर० २६)

अपने पिता उत्तानपादकी गोदमें बैठनेके इच्छुक नन्हें बालक ध्रुवको उसकी सौतेली माँ सुरुचिने अत्यधिक

कठोर वचन कहे। उन वचनोंसे आहत होकर ध्रुव अपनी माता सुनीतिके पास गया। ध्रुवको सिसक-सिसककर रोते हुए देखकर सुनीतिने उसको अत्यन्त सारगर्भित बात कही—

नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद् दुःखच्छिदं ते मृगयामि कञ्चन।
यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया श्रियेतरैरङ्ग विमृग्यमाणया॥

(श्रीमद्भा० ४।८।२३)

बेटा! उन कमल-दल-लोचन श्रीहरिको छोड़कर मुझे तो तेरे दुःखको दूर करनेवाला और कोई दिखायी नहीं देता। देख, जिन्हें प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा आदि अन्य सब देवता ढूँढ़ते रहते हैं, वे श्रीलक्ष्मीजी भी दीपककी भाँति हाथमें कमल लिये निरन्तर उन्हीं श्रीहरिकी खोज किया करती हैं।

माताके वचन सुनकर भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये वनमें भजनके लिये जा रहे ध्रुवको देवर्षि नारदने भी यही सीख दी—

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः।
एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम्॥

(श्रीमद्भा० ४।८।४१)

जिस पुरुषको अपने लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थकी अभिलाषा हो, उसके लिये उनकी प्राप्तिका उपाय एकमात्र श्रीहरिके चरणोंका सेवन ही है।

भगवान् ही सम्पूर्ण विश्व, देव-दानव, ऋषि-महर्षियोंके मूल उत्पत्तिस्थान हैं तथा समग्र जड़-चेतन जगत् उन्हींकी शक्तिसे चेष्टा करता है। इस रहस्यको समझनेवाला श्रद्धा और भक्तिसे युक्त बुद्धिमान् पुरुष निरन्तर भगवान्‌को ही भजते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥

(गीता १०।८)

हम बचपनसे एक कहावत सुनते आ रहे हैं कि एक म्यानमें दो तलवारें नहीं रह सकतीं। इस मनमें या तो भगवान् रहेंगे या संसार। भगवान्‌को कोई दूसरा पसन्द नहीं है, वे अकेले ही रहना चाहते हैं। यदि मनमें भगवान्‌को बसाना है तो इस संसारका आश्रय छोड़ना ही पड़ेगा। वैसे ही यह संसार स्वतः छूट रहा है। छूटनेवालेको छोड़ दिया जाय तो क्या हानि है? इसका परम लाभ यह है कि कभी नहीं छूटनेवाले और हमेशा रहनेवाले भगवान् मिल जायँगे अन्यथा दुविधामें दोनों गये न माया मिली न राम! निर्णय हमारे हाथमें है।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

(कठ० १।३।१४)

संत बनो

(सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)

हर एक गाँवमें एक-आध सच्चा संत तो अवश्य ही होता है।

समाजमें संत नहीं हो तो समाज टिक नहीं सकता।

इसपर भी यदि संत न मिलते हों तो उन्हें ढूँढ़नेके लिये दौड़-धूप करनेके बजाय जीवनको पवित्र बनाकर स्वयं ही संत बन जाओ।

तुम संत बनोगे तो तुम्हें ढूँढ़नेके लिये सच्चे संत सामने दौड़ते चले आयँगे।

जो सहन करना सीखता है, वही संत बनता है।

साधारण मनुष्यका मन क्षण-क्षणमें बदलता रहता है, किंतु संतका मन हमेशा शान्त और स्थिर होता है। (मनपर काबू पा लेना संतका महान् गुण है।)

मानापमान, लाभालाभ, सुख-दुःख आदि द्विधाभरी परिस्थितियोंमें भी संत सौम्य और स्थितप्रज्ञ ही रहता है। संत विक्षोभसे रहित, शान्त, गम्भीर बना रहता है।

तुम ऐसे ही संत बनो।

शौर्य कथा—

वीर अभिमन्यु

(डॉ० श्रीश्यामसुन्दरजी निगम)

गाण्डीव-धनुर्धारी पाण्डव अर्जुनके पुत्र सुभद्रानन्दन अभिमन्युका नाम भारतीय इतिहासमें सदैव अमर रहेगा। महाभारतमें जिस अभूतपूर्व भारत महासमरका विवरण आया है, उसमें वीर अभिमन्युका योगदान निश्चित ही अनूठा है। उसने अपने जीवनके सोलह बसंत भी नहीं देखे थे कि युद्ध प्रारम्भ हो गया। विवाह राजा विराटकी सुन्दरी और विदुषी पुत्री उत्तरासे हो चुका था और पुत्रकी प्रतीक्षा थी। पिताकी ओरसे अभिमन्यु कुरुवंश एवं माताकी ओरसे यदुवंशकी संतति था। इन दो महान् राजवंशोंके मिलनेसे ऐसी अद्भुत प्रतिभाका जन्म लेना सहज ही था।
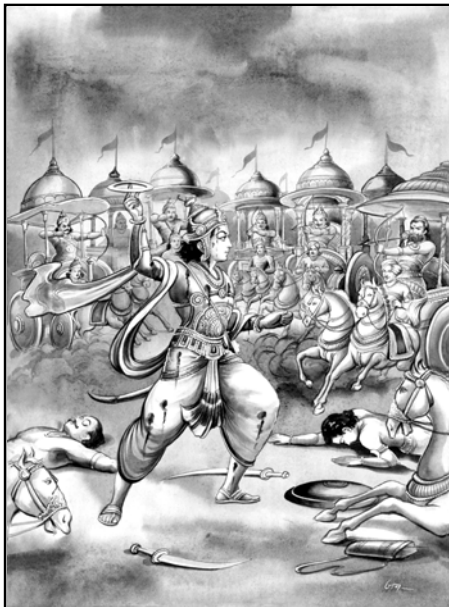
महाभारतके स्वर्गारोहण पर्वमें वर्णन आता है कि चन्द्रमाके महातेजस्वी और प्रतापी पुत्र जो वर्चा हैं, वे ही पुरुषसिंह अर्जुनके पुत्र होकर अभिमन्यु नामसे विख्यात हुए थे। उन्होंने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार ऐसा युद्ध किया था, जैसा दूसरा कोई पुरुष कभी नहीं कर सका था। उन धर्मात्मा महारथी अभिमन्युने अपना कार्य पूरा करके चन्द्रमामें ही प्रवेश किया—

वर्चा नाम महातेजाः सोमपुत्रः प्रतापवान्॥
सोऽभिमन्युर्नृसिंहस्य फाल्गुनस्य सुतोऽभवत्।
स युद्ध्वा क्षत्रधर्मेण यथा नान्यः पुमान् क्वचित्॥
विवेश सोमं धर्मात्मा कर्मणोऽन्ते महारथः।

महाभारतके युद्धमें अभिमन्युने वीरता, शौर्य एवं युद्धकलाका जो आश्चर्यजनक प्रदर्शन किया, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

युद्धका प्रथम दिवस—अपने भाइयों एवं सेनापति धृष्टद्युम्नके साथ उसने कौरव योद्धाओंसे भारी युद्ध किया। उसने कोसल-नरेश बृहद्बल एवं भीष्मसहित अनेक महारथियोंको घायलकर उनके रथोंके ध्वज काट फेंके। भीष्मके साथ जूझते हुए श्वेतकी भी इन्होंने सहायता की थी।

द्वितीय दिवस—कौरव सेनापति भीष्म पितामहका सामना पाण्डवोंने क्रौंच व्यूह बनाकर किया। अभिमन्युने दाहिने पक्षका भार सँभाला। पहले तो उसने भीष्मके विरुद्ध अपने पिताको सहयोग दिया और फिर अनेक कौरव वीरोंको घायल करते हुए दुर्योधनके वीर पुत्र लक्ष्मणसे बराबरीका युद्ध किया।

तृतीय दिवस—कौरवोंके गरुड़ व्यूहका सामना पाण्डवोंने अर्धचन्द्राकार व्यूह बनाकर किया। अभिमन्यु और सात्यकिने मिलकर शकुनिके नेतृत्वमें लड़ रही गान्धार देशकी सेनाका भारी संहार किया।

चतुर्थ दिवस—इस दिन कौरवोंने व्याल एवं पाण्डवोंने क्रौंच व्यूह बनाया। अपने पिता अर्जुनके सहयोगीके रूपमें उसने अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन आदिको भारी टक्कर देकर शत्रुओंके पक्षधर कैकयों, त्रिगर्तों तथा मद्रोंकी घेराबन्दीको तोड़ दिया। उपरान्त उसने भीमकी युद्धमें सहायता की।

पाँचवाँ दिन—इस दिन कौरव मकर-व्यूहमें तथा पाण्डव श्येन-व्यूहमें आमने-सामने थे। इस दिन अभिमन्युने सात्यकि और चेकितानको साथ लेकर शाल्वों तथा कैकयोंपर भारी आक्रमण किया। उसने चित्रसेन, पुरुमित्र और सत्यव्रत नामक शत्रु-वीरोंको घायल किया। घायल होनेके उपरान्त भी उसने दुर्योधनपुत्र लक्ष्मणसे रोमांचकारी एवं दर्शनीय युद्ध किया।

छठा दिन—इस दिन पाण्डव सेना मकर-व्यूह एवं कौरव सेना क्रौंच-व्यूहमें सज्जित खड़ी थी। अपने व्यूहकी ग्रीवापर डटे अभिमन्युने चित्रसेन एवं विकर्णसे भारी युद्ध किया।

सप्तम दिवस—कौरव सेनाके मण्डल व्यूहका सामना पाण्डव सेनाने वज्र-व्यूह बनाकर किया। इस दिन हुए भयानक युद्धमें अभिमन्युने पुनः चित्रसेन, विकर्ण, दुर्मर्षण आदि वीरोंका दृढ़तापूर्वक सामना किया।

अष्टम दिवस—आज पाण्डव सेना श्रृंगाटक-व्यूहमें थी। पहले अभिमन्युने भीमसेन एवं सात्यकिके साथ मिलकर युद्ध किया। आजका दिन वास्तवमें घटोत्कचके शौर्य और उसके मायावी युद्ध का था; किंतु कौरवोंकी ओरसे लड़ रहे राजा भगदत्तके हाथीने इस दिन भारी तूफान मचाया। अभिमन्युने बड़ी मुश्किलसे पाण्डव सेनाकी उससे रक्षा की। इसके बाद अभिमन्युका राजा अम्बष्ठसे भीषण युद्ध हुआ। अम्बष्ठकी तलवारका वार वह साफ बचा गया।

नवाँ दिन—इस दिन कवचबद्ध पाण्डव वीरोंने कौरव सेनाके सर्वतोभद्र व्यूहको चुनौती दी। कौरवोंके पक्षमें राक्षसराज अलम्बुष था। उसके आक्रमणको अभिमन्युने निष्फल बनाकर द्रौपदीके पाँच पुत्रों, जो उसके भाई ही थे, की रक्षा की। अलम्बुषकी पराजय होते ही उसने चित्ररथको भारी टक्कर दी। इस बीच भीष्मके प्रलयकारी आक्रमणने पाण्डव सेनाके छक्के छुड़ा दिये। यह देख स्वयं कृष्ण अपनी प्रतिज्ञा भूलकर भीष्मकी ओर चक्रसहित लपक पड़े। अर्जुनने बड़ी कठिनाईसे उन्हें संयमित किया।
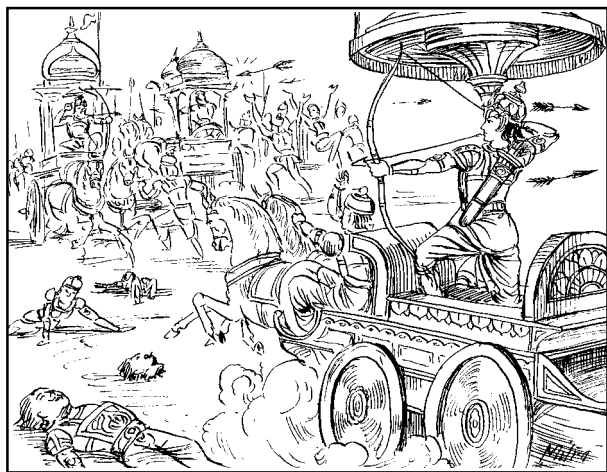
दसवाँ दिन—इस दिन शिखण्डीको आगेकर पाण्डव वीरोंने भीष्मपर भारी आक्रमण किया। काम्बोजराज सुदक्षिणसे अभिमन्युने भारी युद्ध किया। इसके बाद उसने कौरवराज दुर्योधनकी छाती और भुजाओंको अपने बाणोंसे चोटग्रस्त किया। उपरान्त उसने कोसलनरेश बृहद्‌बलको अच्छी टक्कर दी। इसी समय पाण्डवोंको अबतककी सबसे बड़ी उपलब्धि मिली। अत्यन्त भीषण युद्धमें भीष्म पितामह घायल होकर युद्धसे पृथक् होकर शर-शय्यापर सो गये। कर्णके प्रस्तावपर द्रोणाचार्य नये कौरव सेनापति बनाये गये।

भारत युद्धका उत्तरार्ध—भीष्मके उपरान्त युद्ध बड़ा क्रूर एवं भयानक हो उठा। द्रोणाचार्यने पाण्डव पक्षका भारी संहार किया। इस दिन अभिमन्युका राजा पौरव, जयद्रथ और शल्यसे भीषण युद्ध हुआ। ये योद्धा अभिमन्युके हाथों मरते-मरते बचे। द्रोणाचार्यके गरुड व्यूहका सामना पाण्डवोंने मण्डलाग्र व्यूहद्वारा किया। द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरपर आक्रमण करके उनके सहयोगी वीर सत्यजीत, शतानीक, दृढ़सेन, क्षेम, वसुदान तथा पांचाल राजकुमार आदिका वध कर दिया। भयग्रस्त पाण्डव पक्षपर भगदत्त और उसके हाथीने भी खूब कहर बरपाया। इसी बीच संशप्तकोंसे हो रहे भारी युद्धको बीचमें अधूरा छोड़ अर्जुन वहाँ आ गये। उन्होंने भगदत्त, उसके पर्वताकार हाथी, वृषक, अचल और कर्णके भाइयोंको मारकर कौरव सेनाको पीछे खदेड़ दिया। पाण्डवोंका पक्षधर नील अश्वत्थामाके हाथों मारा गया।

तेरहवें दिनका युद्ध—पाण्डव वीर अर्जुन संशप्तकगणोंकी सेनाओंसे निर्णायक युद्ध करने युद्धकी मुख्य भूमिसे काफी दूर चले गये थे। ऐसा द्रोणाचार्यकी योजनानुसार हुआ था। उनकी अनुपस्थितिका लाभ उठाकर किसी एक पाण्डव महारथीके वधकी पूर्व घोषणाकर द्रोणाचार्यने चक्रव्यूह बनाया। इस विकट-

व्यूहका भेदन केवल श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न, अर्जुन और अभिमन्यु ही कर सकते थे। चुनौतीका सामना करनेके लिये युधिष्ठिरने अभिमन्युको चुना। अभिमन्यु व्यूहका भेदन तो कर सकता था, पर उससे बाहर निकलना नहीं जानता था। अतः तय यह हुआ कि अभिमन्युके पीछे-पीछे अत्यन्त शक्तिशाली पाण्डव सेना भी व्यूहमें प्रवेश करके उसकी रक्षा करेगी।

पर यह योजना सफल नहीं हो पायी। अभिमन्युने व्यूहको भेदकर भीतर प्रवेश तो ले लिया, किंतु जयद्रथने भारी युद्ध-कौशलका परिचय देकर भेदित द्वार पुनः बन्द कर दिया। पाण्डव सेना उसमें प्रवेश न कर पायी। व्यूहमें अभिमन्यु अनेक कौरव महारथियोंद्वारा घेरा जाकर उनसे अकेला ही जूझने लगा। उसने घायल सिंहकी भाँति शत्रुपर आक्रमणकर क्रमशः अश्मकपुत्र, राजकुमार, शल्यके एक अनुज, कर्णके एक भाई, वसातीय, सत्यश्रवा, रुक्मरथ, दुर्योधनपुत्र लक्ष्मण, क्राथपुत्र, वृन्दारक, बृहद्बल, अश्वकेतु, कर्णके छः मन्त्रियों, भोज, शत्रुंजय, चन्द्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा, सूर्यभास आदि योद्धाओंको मार डाला। साथ ही द्रोण, कर्ण, शल्य, कृपाचार्य, दुर्योधन, दुःशासन आदि योद्धाओंको लहू-लुहान कर दिया। कौरव महारथियोंने जब उसके सारथी, अस्त्र-शस्त्र, घोड़ों, रथ आदिको नष्ट कर दिया तो उसने रथ-चक्रसे अपना बचाव और आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। चक्र कटनेपर उसने एक गदाद्वारा कालकेय, दस वसातीय रथी आदिको मार डाला। उसी समय दुःशासनके पुत्रने उसपर गदाका वार किया। अभिमन्यु अचेत होकर गिर पड़ा। द्रोण, कर्ण आदि छः कौरव महारथियोंने उसपर ऐसी ही स्थितिमें आक्रमणकर उसका अधर्मपूर्वक वध कर दिया। पाण्डवोंकी सेनापर वज्रपात हो गया। कौरव पक्ष आनन्दसे झूम उठा। उन्हें यह ज्ञात नहीं हो रहा था कि वे सब-के-सब भी कालके गालमें समानेकी तैयारी कर रहे हैं।
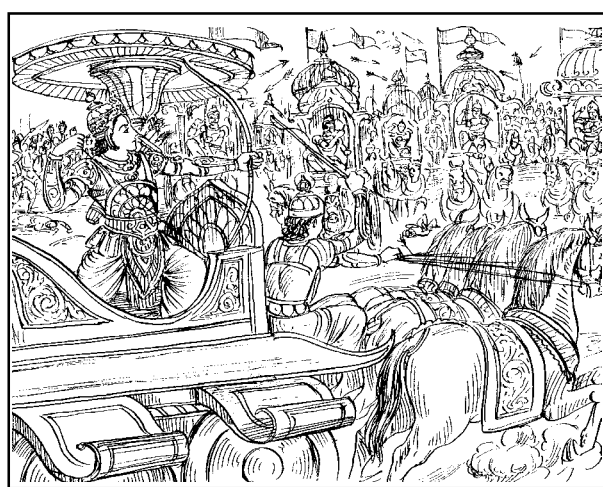
अभिमन्युका स्थान भारतीय इतिहासमें सदैव अमर रहेगा। वह एक अद्वितीय रण-बाँकुरा एवं अप्रतिम शूरवीर था। उसमें जन्मजात प्रतिभा थी। अपनी माता सुभद्राके गर्भमें ही उसने चक्रव्यूह भेदनेकी विधि अपने महान् धनुर्धर पिता अर्जुनसे सीख ली थी। जन्मके उपरान्त उसने अपने वरिष्ठोंसे गदा, तोमर, शक्ति, चक्र, खड्ग आदि अस्त्र-शस्त्रोंके संचालनका सु-प्रशिक्षण ले रखा था। वह ओज, बल एवं साहसका धनी था। अपने स्वजनोंका वह दुलारा तथा अपार यशका स्वामी था। अपनी पत्नी उत्तराका वह सिरमौर था। युद्ध-कौशल एवं दिव्य अस्त्रोंके चालनमें वह दूसरा अर्जुन ही था। वह आज्ञाकारी एवं बलिदानी था। उसकी मृत्युके समय उसकी भार्या उत्तराकी कोखमें उसका पुत्र परीक्षित् पल रहा था, जो कालान्तरमें पाण्डवोंका एकमात्र उत्तराधिकारी हुआ।

पर क्या भारत युद्ध और अभिमन्यु-जैसे प्रतापी वीरका बलिदान सार्थक था ? यह सही है कि पाण्डव पक्षने कौरवोंके शोषण, अन्याय, अधर्म और अतिवादका प्रबल प्रतिरोध किया, उन्हें करना भी चाहिये था; किंतु युद्धमें भारतके जन-धनकी जो अपार क्षति हुई, वह अपूरणीय थी और रहेगी। किसी देशके लाड़ले युवा तेजस्वी, बुद्धिमान् ओजवान् एवं शक्तिशाली योद्धा बनें, यदि यह आवश्यक है तो यह भी जरूरी है कि वे एकताबद्ध रहें और अन्याय, शोषण, अनीति एवं मदान्धतासे दूर रहें।

पर्यावरण-चिन्तन—

रामराज्यमें पर्यावरण-नीति

(श्रीबालकृष्णजी कुमावत)

'पर्यावरण' दो शब्दोंका संयोजन है—'परि' तथा 'आवरण'। 'परि' का आशय चारों ओर तथा 'आवरण' का आशय ढकना या आच्छादन करना है। जिंसवर्टके शब्दोंमें 'प्रत्येक वह वस्तु जो किसी चीजको चारों तरफसे घेरती है एवं उसपर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है, 'पर्यावरण' कहलाती है। नैसर्गिक प्रक्रियाएँ प्रदूषणको कम करने एवं पर्यावरणको शुद्ध करनेमें सहायक होती हैं। उदाहरणार्थ, सूर्यकी किरणों, वर्षाके जल, बहती हवा, नदियोंके प्रवाह, वनस्पति आदिसे पर्यावरण नैसर्गिक रूपमें शुद्ध होता रहता है, किंतु मानवकी क्रियाएँ पर्यावरणको दूषित तथा विकृत करती रहती हैं, जो मानव समाजके लिये भी हानिकारक ही हैं। कभी-कभी तो मानवकी क्रियाओंसे पर्यावरण इतना अधिक दूषित हो जाता है कि नैसर्गिक प्रक्रियाएँ भी पूर्णत: इसे शुद्ध करनेमें असमर्थ रहती हैं। वर्तमानमें पर्यावरणकी प्राय: यही स्थिति हो गयी है। वैज्ञानिकोंको चिन्ता है कि इस निरन्तर बढ़ते हुए प्रदूषणको कैसे नियन्त्रित किया जाय और पर्यावरण-सन्तुलन कैसे स्थापित किया जाय? पर्यावरण-असंतुलनकी विकट समस्या आजके युगकी तथा २१वीं सदीकी प्रमुख चुनौती बन गयी है।

आज देशमें २०० से अधिक पर्यावरण-सम्बन्धी कानून हैं, किंतु अधिकांश निरर्थक एवं निष्प्रभावी सिद्ध हो रहे हैं। हमारी संस्कृति 'अरण्य-संस्कृति' के नामसे जानी जाती है, पर आज पहाड़ मृत एवं सपाट हो रहे हैं, जंगल अस्तित्वहीन हो रहे हैं और भू-संरक्षणकी प्रक्रिया समाप्त होती जा रही है। ऐसा अनुमान है कि भारतमें प्रतिवर्ष १६ लाख हैक्टेयर भूमिपर जंगल समाप्त हो रहे हैं। पर्यावरणविदोंकी मान्यता है कि वनोंकी अन्धाधुन्ध कटाई गहन संकटको आमन्त्रित कर रही है। लगातार सूखा एवं बाढ़ इसीकी देन हैं। जिस प्रकार शरीरमें वात-पित्त-कफका असन्तुलन हमें रुग्ण कर देता है, उसी प्रकार भूमि, जल, वायु आदिमें असन्तुलन होनेपर प्रत्येक जीव-जन्तु, पेड़-पौधे तथा मानवपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है। प्रदूषित पर्यावरण अनेक संक्रामक रोगोंको जन्म देता है। यदि शीघ्र ही पर्यावरण-असन्तुलनको दूर नहीं किया गया तो भविष्यमें यह समूची मानव जातिके लिये एक त्रासदीका रूप ले लेगा।

प्रदूषण-निवारण एवं पर्यावरण-प्रबन्धनके लिये शासन तथा जनता दोनोंका समान उत्तरदायित्व बनता है। श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीने इस बातपर पर्याप्त प्रकाश डाला है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके राजसिंहासनपर आसीन होते ही सर्वत्र हर्ष व्याप्त हो जाता है, सारे भय-शोक दूर हो जाते हैं एवं दैहिक, दैविक तथा भौतिक तापोंसे मुक्ति मिल जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि रामराज्यमें किसी भी प्रकारका प्रदूषण नहीं है। इसीलिये कोई भी अल्पमृत्यु, रोग-पीड़ासे ग्रस्त नहीं है।

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि ब्यापा॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥

वाल्मीकि-रामायणके उत्तरकाण्डके ४१वें सर्गमें श्रीभरतजी श्रीरामके राज्यके विलक्षण प्रभावका उल्लेख करते हुए कहते हैं—

अनामयश्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो ह्ययम्॥
जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नायाति राघव।
अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवा:॥
हर्षश्चाभ्यधिको राजञ्जनस्य पुरवासिन:।
काले वर्षति पर्जन्य: पातयन्नमृतं पय:॥
वाताश्चापि प्रवान्त्येते स्पर्शयुक्ता: सुखा: शिवा:।
ईदृशो नश्चिरं राजा भवेदिति नरेश्वर:॥
कथयन्ति पुरे राजन् पौरजानपदास्तथा।

राघव! आपको राज्यपर अभिषिक्त हुए एक

मासमे अधिक समय हो गया है। तबसे सभी लोग नीरोग दिखायी देते हैं। बूढ़े प्राणियोंके पास भी मृत्यु नहीं फटकती है। स्त्रियाँ बिना कष्टके प्रसव करती हैं। सभी मनुष्योंके शरीर हष्ट-पुष्ट दिखायी देते हैं। राजन्! पुरवासियोंमें बड़ा हर्ष छा रहा है। मेघ अमृतके समान जल गिराते हुए समयपर वर्षा करते हैं। हवा ऐसी चलती है कि इसका स्पर्श शीतल एवं सुखद जान पड़ता है। राजन्! नगर एवं जनपदके लोग इस पुरीमें कहते हैं कि हमारे लिये चिरकालतक ऐसे ही प्रभावशाली राजा रहें।

महाभारतमें भीष्म पितामह कहते हैं कि कालका कारण राजा है या राजाका कारण काल है, इस विषयमें संशय नहीं करना चाहिये। राजा ही कालका कारण होता है। राजाके बुरे-भले होनेके साथ काल पलटा खा जाता है। **'कालस्य कारणं राजा कालो न राजकारणम्। इति संशयो माभूद् राजा कालस्य कारणम्॥'**

रामावतार त्रेतायुगमें हुआ, पर श्रीरामचन्द्रके राजा होते ही समयने पलटा खाया है। त्रेतायुगमें सारी बातें सतयुग-जैसी हो गयीं। रामराज्यमें त्रैलोक हर्षित हुआ, उसका शोक जाता रहा। त्रेतायुगमें तीन चरणोंमें धर्म रहता है, सो रामराज्यमें चारों चरणमें रहने लगा—

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥

(रा०च०मा० ७।२१।३)

पापसे पापीकी हानि ही नहीं होती, वातावरण भी दूषित होता है, जिससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रामराज्यमें पापका अस्तित्व नहीं है, इसलिये दु:ख लेशमात्र भी नहीं है। पर्यावरणकी शुद्धि तथा उसके प्रबन्धनके लिये रामराज्यमें सभी आवश्यक व्यवस्थाएँ की जाती हैं। वृक्षारोपण, बाग-बगीचे, फूल-फलवाले पौधे तथा सुगन्धित वाटिका लगानेमें सब लोग रुचि लेते हैं। नगरके भीतर तथा बाहरका दृश्य मनोहारी है—

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं॥

(रा०च०मा० ७।२८।१-२)

बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं॥

(रा०च०मा० ७।२९ छंद)

अर्थात् सभी लोगोंने विविध प्रकारके फूलोंकी वाटिकाएँ अनेक प्रकारके यत्न करके बनाकर लगायी हैं। बहुत-सी जातिकी सुहावनी ललित बेल सदा बसन्तकी भाँति फूला करती हैं। नगरकी शोभाका जहाँ वर्णन नहीं किया जा सकता, वहाँ बाहर चारों ओरका दृश्य अत्यन्त रमणीय है। रामराज्यमें बावलियाँ और कूप जलसे भरे रहते हैं, जलस्तर भी काफी ऊपर है। तालाब एवं कुँओंकी सीढ़ियाँ भी सुन्दर एवं सुविधाजनक हैं। जल निर्मल है। अवधपुरीमें सूर्यकुण्ड, विद्याकुण्ड, सीताकुण्ड, हनुमानकुण्ड, वसिष्ठकुण्ड, चक्रतीर्थ आदि तालाब हैं, जो प्रदूषणसे पूर्णत: मुक्त हैं। नगरके बाहर १२ वन हैं—अशोक, संतानक, मंदार, पारिजात, चन्दन, चम्पक, प्रमोद, आम्र, पनस, कदम्ब एवं ताल।

गीतावलीमें भी सुन्दर वनों-उपवनोंके मनोहारी दृश्यका वर्णन मिलता है—

बन उपबन नव किसलय कुसुमित नाना रंग।
बोलत मधुर मुखर खग पिकबर गुंजत भृंग॥

(गीतावली, उत्तरकाण्ड पद २१।३)

अर्थात् अयोध्याके वन-उपवनोंमें नवीन पत्ते और कई रंगके पुष्प खिले हुए हैं, चहचहाते हुए पक्षी और सुन्दर कोकिल सुमधुर बोली बोल रहे हैं, भौंरे गुंजार कर रहे हैं।

महाराजा स्वयं अपने राज्यके उपवनोंका निरीक्षण करने भी जाते हैं, जो यह दर्शाता है कि शासक भी पर्यावरणके प्रति पूर्णत: सचेत है—

भ्रातन्ह सहित राम एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा॥
सुंदर उपबन देखन गए। नव तरु कुसुमित पल्लव नए॥

रामराज्यमें जल-प्रदूषण बिल्कुल नहीं है। स्थान-स्थानपर पृथक्-पृथक् घाट बँधे हुए हैं। कीचड़ कहीं

भी नहीं होता है। नदियोंका जल गहरा एवं निर्मल है। पशुओंके उपयोगहेतु घाट नगरसे दूर बने हुए हैं। पानी भरनेके घाट अलग हैं, जहाँ कोई भी व्यक्ति स्नान नहीं करता। नहानेके लिये राजघाट अलगसे है, जहाँ चारों वर्णोंके लोग स्नान करते हैं—

उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर॥
दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजिगज ठाटा॥
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना॥

(रा०च०मा० ७।२८, ७।२९।१-२)

वायु-प्रदूषण भी रामराज्यमें दिखायी नहीं देता। शीतल, मन्द तथा सुगन्धित वायु सदैव बहती रहती है—

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिध सदा बह सुन्दर॥

(रा०च०मा० ७।२८।३)

पक्षी-प्रेम रामराज्यमें अद्वितीय है। पक्षीके पैदा होते ही उसका पालन-पोषण किया जाता है। (बड़े होनेपर पकड़ा नहीं जाता) बचपनसे ही पालनेसे दोनों ओर प्रेम रहता है। बड़े होनेपर पक्षी उड़ते तो हैं, किंतु कहीं चले नहीं जाते। पक्षियोंको रामराज्यमें पढ़ाया भी जाता है, उन्हें सुसंस्कारित किया जाता है—

नाना खग बालकन्हि जिआए। बोलत मधुर उड़ात सुहाए॥
मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर सोभा अति पावत॥
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं॥
सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक॥

(रा०च०मा० ७।२८।४—७)

रामराज्यकी बाजार-व्यवस्था भी अतुलनीय है। राजद्वार, गली, चौराहे और बाजार स्वच्छ, आकर्षक दीप्तिमान हैं। विभिन्न वस्तुओंका व्यापार करनेवाले (बजाज, सराफ एवं महाजन) कुबेरके समान सम्पन्न हैं। रामराज्यमें वस्तुओंका मोल-भाव नहीं होता। दुकानदार सभी सत्यवादी एवं एकवचनी हैं। बाजार पूर्णत: सुसज्जित रहते हैं। वस्तुओंके पर्याप्त भण्डार हैं। हर प्रकारकी वस्तु आसानीसे उपलब्ध हो जाती है। संग्रहखोरी, मुनाफाखोरी, कालाबाजारीका नाम-निशान नहीं है। व्यापारी एवं ग्राहक दोनों सुखी हैं, ईमानदार हैं तथा राज्यके प्रति निष्ठावान् एवं उत्तरदायी हैं—

बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे॥

(रा०च०मा० ७।२८ छंद)

रामराज्यमें नगर-नियोजन, शिल्प-वैशिष्ट्य आदि भी विलक्षण है। भवन काफी ऊँचे हैं, सफेद रंगसे रँगे हैं, शुद्ध हवाके लिये उनमें झरोखे बने हुए हैं, आँगन लम्बे-चौड़े हैं, घर-घर सुन्दर चित्रशालाएँ हैं; दरवाजों, खिड़कियों तथा झरोखोंमें रत्न-मणियाँ जड़ी हुई हैं तथा रंगोंका संयोजन अत्यन्त सुन्दर एवं सुखदायक है। नगरके चारों तरफ सुन्दर-सुदृढ़ कोट है, जो सुरक्षाके लिये पर्याप्त है। कोटपर अनेक रंगके कँगूरे हैं, ऐसा लगता है नवग्रहोंकी बड़ी भारी सेना बनाकर अमरावतीको घेरा गया हो—

पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर॥
नव ग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई॥
महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा॥
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं॥

रामराज्यकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वहाँ चारित्रिक प्रदूषण बिलकुल नहीं है। सभी पुरुष एकनारी-व्रतमें रत हैं और स्त्रियाँ भी पतिव्रतधर्ममें रत हैं। महारानी सीताकी भाँति सभी स्त्रियाँ मन, वचन एवं कर्मसे अपने पतिका हित चाहती हैं—

एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

(रा०च०मा० ७।२२।८)

उल्लेखनीय है कि जहाँ राजा एकपत्नीव्रतधारी है, वहाँ प्रजा भी उनका अनुसरण करती है। श्रीमद्भगवद्-गीतामें कहा है कि समाजका शीर्ष-पुरुष जैसा आचरण स्वयं करता है, जन-सामान्य भी उसका अनुसरण करने

लगता है। शीर्ष-पुरुष जो प्रमाण स्थापित कर देता है, जन-सामान्य भी उसीके अनुसार बरतने लगता है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(गीता ३। २१)

रामराज्यमें तो यहाँतक ध्यान रखा जाता है कि जो पौधे चरित्र-निर्माणमें सहायक होते हैं, उनका रोपण अधिक किया जाता है। पर्यावरण-विशेषज्ञों तथा आयुर्वेदशास्त्रकी मान्यता है कि तुलसीका पौधा जहाँ सभी प्रकारसे स्वास्थ्यके लिये उपयोगी है, वहाँ वह चरित्र-निर्माणमें भी सहायक है। यही कारण है कि रामराज्यमें ऋषि-मुनि नदियों तथा तालाबोंके किनारे तुलसीके पौधे लगाते हैं—

तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई॥

(रा०च०मा० ७। २९। ६)

रामराज्यमें सब लोग सत् साहित्यका अनुशीलन करते हैं, सब चरित्रवान् हैं, सब संस्कारवान् हैं, सबके घरोंमें सुखद वातावरण हैं और सब शासनसे सन्तुष्ट हैं। जहाँ राजा अपनी प्रजाका पालन पुत्रवत् करता है, वहाँका समाज निश्चित ही सदा प्रसन्न एवं समृद्ध रहता है। अवधपुरवासियोंकी सुख-सम्पदाका वर्णन हजार शेषजी भी नहीं कर सकते, जहाँ श्रीरामचन्द्र राजा हैं—

अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥

(रा०च०मा० ७। २६)

इस प्रकार रामराज्यमें किसी भी प्रकारका प्रदूषण नहीं है। पर्यावरण-प्रबन्धन अद्वितीय है। राजा एवं प्रजामें अटूट स्नेह, सम्मान एवं सामंजस्य है, प्राणीमात्र सुखी हैं। मनुष्योंमें जहाँ वैर-भाव नहीं है, वहाँ पशु-पक्षी भी अपने सहज वैर-भावको त्याग देते हैं। वनके वृक्ष बारह मास फलते-फूलते हैं। हाथी एवं सिंह एक साथ रहते हैं—परस्पर प्रेम रखते हैं। वनमें पक्षियोंके अनेक झुण्ड निर्भय होकर विचरण करते हैं। उन्हें शिकारीका भय नहीं है। लताएँ तथा वृक्ष माँगनेपर मधु टपकाते हैं। गौएँ कामधेनुकी तरह मनचाहा दूध देती हैं। पृथ्वी सदा खेतीसे भरी रहती है। चन्द्रमा उतनी ही शीतलता और सूर्य उतना ही ताप देता है, जितनी जरूरत होती है। पर्वतोंने अनेक प्रकारकी मणियोंकी खानें प्रकट कर दी हैं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल, स्वादिष्ट एवं सुख देनेवाला जल बहाती हैं। जब जितनी जरूरत होती है, मेघ उतना ही जल बरसाते हैं—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥
लता बिटप मागें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्त्रवहीं॥
बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥

(रा०च०मा० ७। २३। १—३, ५; ७। २३)

रामराज्यमें पर्यावरण-प्रबन्धनका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने सूत्ररूपमें यह संकेत दिया है कि समाजके पर्यावरण-सन्तुलन एवं पर्यावरण-प्रबन्धनमें शासक एवं प्रजाका संयुक्त उत्तरदायित्व होता है। दोनोंके परस्पर सहयोग, स्नेह, सम्मान, सौहार्द तथा सामंजस्यसे ही समाज एवं राष्ट्रको प्रदूषणमुक्त किया जा सकता है। प्रकृतिके साथ कोई छेड़छाड़ नहीं होनी चाहिये। पर्यावरण-चेतनाका शासक एवं प्रजा दोनोंमें पर्याप्त विकास होना चाहिये। राज्यकी व्यवस्थामें प्रजाका पूर्ण सहयोग हो और प्रजाकी सुख-सुविधाका शासक पूरा-पूरा ध्यान रखे—यह रामराज्यका सन्देश है। निजी स्वार्थ एवं राष्ट्रिय हितमें टकराहट नहीं होना चाहिये तथा राष्ट्रिय हितको सर्वोपरि समझा जाना चाहिये। शासक एवं प्रजाके सामूहिक प्रयासों एवं सहयोगसे ही समाजमें वांछित क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया जा सकता है और एक आदर्श व्यवस्था स्थापित की जा सकती है। **['तुलसी सौरभ' से साभार]**

पाकिस्तानके पाँच पवित्र मन्दिर

(श्रीशैलेन्द्रसिंहजी)

पाकिस्तानमें अनेक मन्दिर हैं, जो आज बहुत ही खस्ता हालमें हैं। पाकिस्तान सरकारने कई बार कहा है कि सनातन धर्मसे जुड़े कुछ ऐतिहासिक स्थलों और मन्दिरोंको ठीक कराकर पर्यटनकी दृष्टिसे उन्हें विकसित किया जायगा, पर अबतक कुछ नहीं हुआ है। यहाँ प्रस्तुत है पाकिस्तानके पाँच बड़े मन्दिरोंका महत्त्व और उनका हाल—

(१) कटासराज मन्दिर

'कटास' संस्कृतके कटाक्ष शब्दका अपभ्रंश है, जिसका अर्थ होता है आँखें, नेत्र। कहा जाता है कि सतीजीके वियोगमें शिवजीने जब रुदन किया था तो उनके रुदनसे धरतीपर दो कुण्ड बन गये थे। इनमेंसे एक कुण्ड पुष्करमें ब्रह्म सरोवरके रूपमें मौजूद है, जबकि दूसरा सरोवर कटासराज मन्दिर-परिसरमें मौजूद है। शिवजीकी आँखसे निकले आँसूसे बने इस पवित्र सरोवरमें स्नान करनेसे मनुष्यके रोग और दोष दूर हो जाते हैं। सन् १९४७ ई० में देश-विभाजनकी मार सबसे अधिक इस मन्दिर और सरोवरपर भी पड़ी और न तो मन्दिरका रखरखाव किया गया और न ही सरोवरका। पिछले साल तो एक रपट आयी थी कि सरोवरका पानी एक सीमेन्ट कारखानेको दिया जा रहा है। जाहिर है, पाकिस्तानके लिये इस सरोवरका इससे अधिक और कोई महत्त्व भी नहीं है। लेकिन खुद कटासराज मन्दिर-परिसरका यह सरोवर कितना महत्त्वपूर्ण है, वह इसके जलसे समझा जा सकता है। अहमद बशीर ताहिरने अपनी 'डाक्युमेन्ट्री' में इस बातका जिक्र किया है कि यहाँ सरोवरका पानी दो रंगका है। एक हरा और दूसरा नीला। जहाँ सरोवरका पानी हरा है, वहाँ सरोवरकी गहराई कम है, लेकिन जहाँ सरोवर बहुत गहरा है, वहाँ पानी गहरा नीला है। लाख उपेक्षाके बाद भी आज इस सरोवरका पानी बहुत स्वच्छ है।

कटासराज मन्दिर हिन्दुओंके पवित्रतम तीर्थोंमेंसे एक है; क्योंकि ऐसा बताया जाता है कि यहीं इसी स्थानपर शिव और पार्वतीका विवाह हुआ था। महाभारत-कालमें अपने निष्कासनके दौरान पाण्डवोंने ४ वर्ष कटासराजमें ही बिताये थे। इसी कटासराज सरोवरके किनारे यक्षने युधिष्ठिरसे यक्ष-प्रश्न किये थे, जो इतिहासमें अमर सवाल बनकर दर्ज हो गये। पंजाबकी राजधानी लाहौर से २७० किलोमीटरकी दूरीपर चकवाल जिलेमें स्थित कटासराज मन्दिर-परिसरमें स्वयंभू शिवलिंग है, जिसके बारेमें कहा जाता है कि वे आदिकालसे वहाँ स्थित है। पाण्डवोंने इसी शिवलिंगका पूजन किया था और वर्तमान समयमें भी यह शिवलिंग उपेक्षित अवस्थामें ही सही, अपने स्थानपर अडिग है। शिव-मन्दिरके अलावा कटासराजमें राम-मन्दिर और अन्य देवी-देवताओंके भी मन्दिर हैं, जिन्हें सात घरा मन्दिर परिसर कहा जाता है। मन्दिर-परिसरमें हरिसिंह नलवाकी प्रसिद्ध हवेली भी है।

(२) हिंगलाज माता मन्दिर
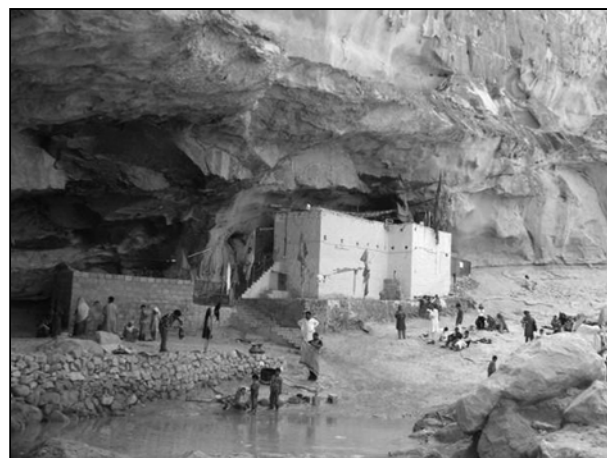
कटासराज मन्दिर-परिसरके अलावा पाकिस्तानमें अनादिकालसे जो धार्मिक स्थल सबसे अधिक मान्यता प्राप्त है, वह हिंगलाज माताका मन्दिर है। भारतीय उपमहाद्वीपमें क्षत्रियोंकी कुलदेवीके रूपमें विख्यात हिंगलाज भवानी माताका मन्दिर ५२ शक्तिपीठोंमेंसे एक है। ऐसी

मान्यता है कि आदिशक्तिका सिर जहाँ गिरा, वहींपर हिंगलाज माताका मन्दिर स्थापित हो गया। हिंगलाज भवानी माताका मन्दिर बलोचिस्तानके ल्यारी जिलेके हिंगोल नेशनल पार्कमें हिंगोल नदीके किनारे स्थित है। क्वेटा–कराची मार्गपर मुख्य हाइवेसे करीब एक घण्टेकी पैदल दूरीपर स्थित हिंगलाज माताका मन्दिर पाकिस्तानके प्रमुख शहर कराचीसे २५० किलोमीटर दूर है।

बँटवारेके बादसे ही यहाँ आनेवाले दर्शनार्थियोंकी संख्या भले ही बहुत कम हो गयी हो, लेकिन यह मन्दिर आज भी स्थानीय बलोचवासियोंके लिये समान रूपसे महत्त्वपूर्ण है। इस मन्दिरके सालाना जलसे या मेलेमें केवल हिन्दू ही नहीं आते, बल्कि मुसलमान भी आते हैं, जो श्रद्धासे हिंगलाज माता मन्दिरको 'नानीका मन्दर' या फिर 'नानीका हज' कहते हैं। नानी शब्द संस्कृतके ज्ञानीका अपभ्रंश है, जो कि ईरानकी एक देवी अनाहिताका भी दूसरा नाम है।

हिंगलाज माता मन्दिरके बारेमें कहा जाता है कि यहाँ गुरु नानकदेव भी दर्शनके लिये आये थे। हिंगलाज माता मन्दिर एक विशाल पहाड़के नीचे पिण्डीके रूपमें विद्यमान है, जहाँ माताके मन्दिरके साथ–साथ शिवजीका त्रिशूल भी रखा गया है। हिंगलाज माताके लिये हर साल मार्च–अप्रैल महीनेमें लगनेवाला मेला न केवल हिन्दुओंमें, बल्कि स्थानीय मुसलमानोंमें भी बहुत लोकप्रिय है। ऐसा कहा जाता है कि दुर्गम पहाड़ी और शुष्क नदीके किनारे स्थित माता हिंगलाजका मन्दिर दोनों धर्मावलम्बियोंके लिये अब समान रूपसे महत्त्वपूर्ण हो गया है।

(३) गोरी मन्दिर

पाकिस्तानके सिन्ध प्रान्तमें थारपारकर जिलेमें स्थित गोरी मन्दिर पाकिस्तानस्थित हिन्दुओंका एक और महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल है। पाकिस्तानमें सबसे अधिक हिन्दू इसी थारपारकर जिलेमें ही रहते हैं, जो मूल रूपसे वनवासी हैं। इन्हें पाकिस्तानमें थारी हिन्दू कहा जाता है। थारपारकरमें इन थारी हिन्दुओंकी आबादी कुल आबादीके करीब ४० फीसदी है। गोरी मन्दिर मुख्य रूपसे जैन मन्दिर है, लेकिन अब इस मन्दिरमें अन्य देवी–देवताओंकी मूर्तियाँ भी स्थापित हैं। जैन धर्मके २३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथकी मुख्य मूर्ति अब वहाँसे हटाकर मुम्बईमें स्थापित की जा चुकी है, जिन्हें गोदीजी पार्श्वनाथ कहते हैं।

मूल रूपसे जैन–धर्मको समर्पित यह मन्दिर अपने स्थापत्यके लिहाजसे बेजोड़ है और समझा जाता है इस मन्दिरका स्थापत्य और माउन्ट आबू मन्दिर–परिसरका स्थापत्य एक ही शैलीका है। इस मन्दिरका निर्माण मध्यकालमें किया गया था। हालाँकि अब पाकिस्तानमें जैन धर्मके अनुयायी नाममात्रके बचे हैं, लेकिन इस मन्दिर–परिसरमें स्थानीय भील और थारी हिन्दू पूजा–उपासना करते हैं।

(४) मरी सिन्धु मन्दिर

मरी इंडसके नामसे मशहूर यह मन्दिर परिसर पहली शताब्दीसे पाँचवीं शताब्दीके बीच बनाया गया है। मरी उस वक्त गान्धार प्रदेशका हिस्सा था और चीनी यात्री ह्वेनसांगने भी मरीका जिक्र यह कहते हुए किया है कि इस पूरे इलाकेमें हिन्दू और बौद्ध मन्दिर खत्म हो रहे हैं। हालाँकि पाकिस्तान और दुनियाके आधुनिक

इतिहासकार मानते हैं कि मरीके मन्दिर सातवीं शताब्दीके बादके हो सकते हैं; क्योंकि इन मन्दिरोंके स्थापत्यमें कश्मीरकी स्थापत्य शैली स्पष्ट रूपसे दिखायी देती है, जो इस क्षेत्रमें इस्लामिक आक्रमणके बाद विकसित हुई है। आधुनिक अन्वेषणशास्त्री इन मन्दिर-समूहोंको साल्ट रेन्ज टेम्पल्स भी कहते हैं।

इतिहासकारोंका एक वर्ग यह भी कहता है कि ये मन्दिर राजपूतोंद्वारा बनवाये गये हो सकते हैं, जिन्होंने यहाँ शासन किया था। मरीके मन्दिर न सिर्फ अति प्राचीन हैं, बल्कि स्थापत्यकी अद्भुत मिसाल भी हैं, लेकिन पाकिस्तानमें अब उपेक्षाका शिकार होकर ये मन्दिर लगभग खण्डहरमें तब्दील हो चुके हैं।

(५) शारदापीठ

महादेवी शारदाके बिना कश्मीरका कोई अस्तित्व नहीं था, लेकिन अब ऐसा नहीं है। अब कश्मीर तो है लेकिन देवी शारदाका ही कोई अस्तित्व नहीं। सनातन धर्मशास्त्रके अनुसार भगवान् शंकरने सतीके शवके साथ जो ताण्डव किया था, उसमें सतीका दाहिना हाथ इसी पर्वतराज हिमालयकी तराई कश्मीरमें गिरा था शारदा गाँवमें। यहाँ मन्दिर कब अस्तित्वमें आया इसका कोई इतिहास नहीं है, लेकिन अब भारतीय नियन्त्रण-रेखासे महज १७ मील दूर पाकिस्तान अधिकृत कश्मीरके इस शारदा गाँवमें मन्दिरके नामपर सिर्फ यहाँ भग्नावशेष बचा है।

शारदापीठका महत्त्व इसलिये भी है कि यह ५२ शक्तिपीठोंमें नहीं, बल्कि १८ महाशक्तिपीठमेंसे एक है। शारदापीठमें पूजा और पाठ दोनों होता था। यह श्रीविद्या-साधनाका सबसे उन्नत केन्द्र था। शैव सम्प्रदायके जनक कहे जानेवाले शंकराचार्य और वैष्णव सम्प्रदायके प्रवर्तक रामानुजाचार्य दोनों ही यहाँ आये और दोनोंने ही दो महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल कीं। शंकराचार्य यहीं सर्वज्ञपीठपर बैठे तो रामानुजाचार्यने यहींपर श्रीविद्याका भाष्य प्रवर्तित किया। पंजाबी भाषाकी गुरुमुखी लिपिका उद्गम शारदा लिपिसे ही होता है और भी न जाने ऐसे ही कितने अचरज इस मन्दिर और विद्याकेन्द्रसे जुड़े थे।

[पाञ्चजन्यसे साभार]

विदेशोंके कुछ शिवलिंग तथा देवमूर्तियाँ

काशीके श्रीबेचूसिंह शाम्भवने 'शिव-निर्माल्य-रत्नाकर' नामका एक ग्रन्थ लिखा था, जो अब अप्राप्य हो गया है। ग्रन्थकी प्रस्तावनामें फ्रान्सके 'लुई' नामक विद्वान्के ग्रन्थोंके आधारपर अनेक देशोंके शिवलिंग-पूजनका वर्णन है। उस वर्णनका संक्षिप्त सार नीचे दिया जा रहा है। वर्तमान समयमें इस वर्णनमें आयी मूर्तियोंकी स्थिति क्या है, इसका पता नहीं है—

इजिप्ट (मिश्र)-के 'मेफिस' तथा 'अशीरस' नामक स्थानोंमें नन्दीपर विराजमान त्रिशूल-हस्त व्याघ्रचर्माम्बरधारी शिवकी अनेकों मूर्तियाँ हैं। स्थानीय लोग उनको दूधसे स्नान कराते हैं और उनपर बिल्वपत्र चढ़ाते हैं।

तुर्किस्तानके 'बाबिलन' नगरमें एक हजार दो सौ फुटका एक महालिंग है। संसारमें यह सबसे बड़ा शिवलिंग है। इसी प्रकार 'हेड्रापोलिस' नगरमें एक विशाल मन्दिर है, जिसमें तीन सौ फुट ऊँचा शिवलिंग है।

मुसलमानोंके तीर्थ मक्कामें 'मक्केश्वर' लिंग है, जिसे काबा कहा जाता है। वहाँके 'जम-जम' नामक कुएँमें भी एक शिवलिंग है, जिसकी पूजा खजूरकी पत्तियोंसे होती है। 'पंचशेर' और 'पंचवीर' नामसे अफरीदिस्तान, चित्राल काबुल, बलख-बुखारा आदिमें शिवलिंग ही पूजित होता है। [तीर्थांक]

मानसिक तनावके शमनमें मानसिक भावनाओंका महत्त्व

(डॉ० श्री ओ० पी० द्विवेदी एवं डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)

जीवनमें पल-पल नवनिर्माण हो रहा है, उत्साहकी तरंगोंसे मनको तरंगित एवं आप्लावित करते रहें। जीवन एक सुनहरा वरदान है। मानवको स्वस्थ एवं सुखी रहनेके लिये ही यह स्वर्णिम अवसर मिला है। जीवनसे बढ़कर अधिक मूल्यवान् कुछ भी नहीं है। यदि आपका समस्त लुट गया है और जीवन शेष बचा है तो मानिये कुछ भी नहीं लुटा और सब कुछ शेष रह गया। हमें अपने जीवनका महत्त्व समझना चाहिये, जीवनमें रुचि लेना आद्य एवं सर्वप्रथम आवश्यकता है। धर्म, अर्थ, काम, ज्ञान, योग, भोग, त्याग, मुक्ति आदि सब कुछ बादमें है तथा जो जीवनमें रुचि नहीं लेता है, वह जिन्दगीका बोझ ढोनेवाला दयनीय पशु कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

प्रत्येक मनुष्यमें महानताकी अत्यन्त सम्भावनाएँ छिपी पड़ी हुई हैं, अतः मनुष्यको अपनी महत्ता पहचानकर उसके अनुरूप चिन्तन और कर्म करना चाहिये। कोई मनुष्य एक दिशामें महान् हो सकता है तो कोई अन्य मनुष्य किसी दूसरी दिशामें आगे बढ़ सकता है, जिस मनुष्यके पास जो कुछ गुण शक्ति है, वह उसीको लेकर ऊँचा उठे तभी उसकी सफलता और सार्थकता प्रमाणित हो सकती है। सदा रोते रहनेका स्वभाव मनुष्यको दयनीय बना देता है। मनुष्यको अपने अपमानका भय, हानिका भय, रोगका भय, मृत्युका भय, अनेक प्रकारका भय घेरे रहता है तथा सारा जीवन यूँ ही रोते-डरते बीत जाता है। भय बार-बार मनको विचलित कर देता है, जो भूखे भेड़ियेकी भाँति स्वास्थ्य एवं सुखको खा जाता है तथा चिन्ता हमें पंगु बना देती है। काल्पनिक चिन्ताओंमें हम अपनी जीवनी-शक्तिका क्षय करते ही रहते हैं। अतः हम मनुष्योंको घृणा, भय, क्रोध, चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष, शोक, क्लेश आदि मानसिक विकारोंसे बचना चाहिये; क्योंकि ये हमारे रक्तसंचारपर दुष्प्रभाव डालते हैं, जिससे मानसिक व्याधियाँ या विकलता उत्पन्न होती है।

मानसिक तनावसे बचनेके लिये हमें अपनी बाह्य एवं आन्तरिक भावनाओंका नियन्त्रण निम्नानुसार आवश्यक बिन्दुओंपर करना चाहिये—

हमेशा प्रसन्नचित्त रहें—

- जिस क्षण आपको लगे कि आपके हृदयमें भय, क्रोध, तनाव आदिके विचार आ रहे हैं तत्काल अपने मनको अच्छे विचारोंकी ओर ले जायँ ताकि तनावपूर्ण भावोंके स्थानपर शान्ति एवं प्रसन्नताके भाव उत्पन्न हो सकें।
- अपना मुख्य विचार सदा याद रखें, 'मैं अपने विचार व्यवहारमें सदैव शान्त एवं प्रसन्न रहूँगा।' ऐसा दृढ़ निश्चय व्रत पालन करना चाहिये।
- यदि आप निश्चिन्त हैं तो खूब हँसें। बुरे अर्थात् विषम हालातमें भी स्वयंको अधिक प्रसन्न रखें। विपत्तिमें भी किसीका न बुरा करें, न सोचें।
- क्रोध न करें। दुःखको बार-बार मनमें न दोहरायें। पराजयको विजयमें बदलनेकी कोशिश करें। मनको शान्त रखें। धैर्य न छोड़ें। जिन हालातको आप बदल नहीं सकते उन्हें स्वीकारकर निश्चय एवं सूझ-बूझसे सुधारनेका प्रयास करें। जो आपत्ति आ पड़ी है, उसे शान्तिपूर्वक सहन करें।

मूलभूत मौलिक आवश्यकताएँ—

प्रत्येक मनुष्यकी छः मौलिक आवश्यकताएँ हैं। प्रेम, सुरक्षा, सृजनात्मक स्वतन्त्रता, सम्मान एवं प्रशंसा, नवीन प्रयोग एवं स्वाभिमान। इन छः मेंसे यदि एक भी आवश्यकता पूरी न हो तो मनुष्य अन्दर ही अन्दर उनकी पूर्तिके लिये व्याकुल रहता है। सुखद जीवनके लिये इन छः आवश्यकताओंका पूरा होना जरूरी है। आप अपनी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ इस प्रकार पूरी कर सकते हैं—

- अपनी संरक्षाका उचित प्रबन्ध करें। शेष नियतिके हाथों छोड़ दें। लोगोंको प्यार करें।

• नवीन प्रयोगोंके लिये अपने मनोरंजन करनेका उचित प्रबन्ध करें।

• दूसरोंके स्वाभिमानको आहत न करनेका प्रयास करें। दूसरोंकी उदार हृदयसे प्रशंसा करें, उचित सम्मान दें। उनसे वैसा ही बर्ताव करें, जैसा आप अपने लिये चाहते हैं।

कैसी हो हमारी दिनचर्या—

• सादगी-जैसा कोई आभूषण नहीं। जीवन सादा रखें। मनोरंजनका साधन, कोई हॉबी अवश्य चाहिये।

• अपने कामसे प्यार करें। उसे पूर्व रुचि एवं लगनसे करें। बीमारीकी चिन्ता बीमारीको और अधिक बढ़ाती है।

• छोटी-छोटी बातोंपर चिड़चिड़ायें नहीं। घृणा न करें। नफरतकी आग नफरत करनेवालेको ही जलाती है। जीवनमें सन्तुष्ट रहकर बेहतरीका प्रयास करना सीखें।

• सदा मधुर बोलें। लोगोंको खुश रखने एवं लोकप्रिय होनेका यह सबसे सरल उपाय है। जल्दबाजी न करें। हड़बड़ाहटमें किये गये काममें कुछ-न-कुछ गलतियाँ रह जाती हैं।

• प्रातः हँसते हुए उठें। ईश्वरको धन्यवाद दें। इससे सारा दिन प्रसन्नतापूर्वक बीत जाता है।

• परिवारके साथ हँसें-बोलें, स्वस्थ संवाद रखें। मनुष्यके लिये प्रसन्नचित्तता आरोग्यका मूल है।

• वर्तमान क्षणका आनन्द लें। ऐसा करनेसे भविष्य भी सुखमय बनेगा। आस-पड़ोसके लोगोंमें दिलचस्पी लें, उनकी उचित सहायता करें।

कैसा हो खुशहाल परिवार—एक खुशहाल परिवारके लिये निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं—

• प्यारके बिना परिवार व्यर्थ है। परिवारके सभी सदस्योंमें समान प्यार एवं सौहार्द होना चाहिये।

• एक-दूसरेकी सहायता करें। प्रसन्न परिवारके लिये संगठनकी भावना होना आवश्यक है।

• रहन-सहन सादा रखें। खुशी एक ऐसी भावना है, जो मनके भीतर रहती है, उसे बाहरी सुख-सुविधाएँ ज्यादा प्रभावित नहीं करतीं।

• सुन्दर इमारत एवं फर्नीचर एक अच्छा घर नहीं बनाते। एक अच्छा घर उसमें रहनेवाला, सन्तुष्ट एवं प्रेमपूर्ण परिवार बनाता है।

• पराजयको विजयमें बदलें। समयानुसार स्वयंको भी बदल लें। यही समझदारी है।

बच्चोंसे हमारा व्यवहार—

• बच्चोंको रोक-टोककी अपेक्षा बेहतर जीवनके आदर्श देनेकी आवश्यकता है।

• बच्चे बहुत कुछ अनुकरण करनेवाले होते हैं, जिससे कि वे अपने माता-पिताके अनुसार ही अपना जीवन बना लेते हैं।

• बच्चोंको घर एवं बाहरके लोगोंका आदर करना सिखायें। बच्चोंपर कठोरताका उचित कारण होना चाहिये।

• बच्चोंकी मौलिक मनोवैज्ञानिक जरूरतोंको पूरी करना चाहिये। बच्चोंको मारना नहीं चाहिये। शारीरिक दण्ड बच्चोंके लिये हानिकारक होता है।

• उन्हें अत्यधिक सुरक्षाके माहौलमें नहीं रखना चाहिये।

• बच्चोंको बाह्यमुखी बनायें। जीवनमें ऐसे बच्चोंके सफल होनेकी सम्भावनाएँ अपेक्षाकृत अधिक होती हैं। बच्चोंपर दबाव पक्का एवं प्रेमपूर्ण होना चाहिये।

वृद्धावस्थामें सुखद अनुभूति—

यदि समय, परिस्थिति एवं वातावरणसे तालमेल न बनाकर चले तो वृद्धावस्था जीवनका सुनहरा समय होनेकी अपेक्षा दुःखोंकी खान बन जाता है। इसके सामान्य कारण हैं—

• स्वास्थ्य खराब हो जानेका भय। बच्चोंकी ओरसे लापरवाही। आर्थिक अवस्था कमजोर हो जानेका भय। बेरोजगारीका भय।

• परिवारकी सत्तासे वंचित हो जाना। मित्रोंका चल बसना। मृत्युका भय। आत्मसम्मानका आहत होना।

• अपनी सत्ता एवं स्वामित्वको धीरे-धीरे छोड़ें।

• वृद्धावस्थाके लिये कुछ धन संचित करें। मनको शान्त रखें। परिवारसे अच्छे सम्बन्ध रखें।

• यदि आप चाहते हैं कि बुढ़ापेमें बच्चे आपकी सेवा करें तो आप भी अपने बूढ़े माता-पिताकी सेवा करें।

• अपने बच्चोंके निजी मामलातमें दखल न करें। वृद्धावस्थाको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करें।

• बच्चोंकी ओरसे अत्यधिक देख-रेख एवं परवाहकी आशा न रखें।

• पुराना मित्र चल बसे तो नये मित्र बनायें। मृत्युसे कभी न डरें। मनोरंजनके लिये कोई शौक रखें।

• सदैव याद रखें कि वृद्धावस्था शरीरकी नहीं, मनकी अवस्था अधिक है। अधिक आयुमें भी व्यक्ति युवा रह सकता है। बशर्ते उसका हृदय युवा हो। अतः सदा उत्साहपूर्ण एवं आशावादी विचारधारा रखें।

अपने आस-पास सुखद वातावरण निर्मित करें—

• मन शान्ति महसूस करे, इसके लिये कुहनियों और घुटनोंके पीछेके भागपर बर्फका एक टुकड़ा रखें, गर्दनके पिछले भागमें ठण्डा भीगा तौलिया रखें।

• तनावके दौरान किसी भी पालतू जानवर यथा गायसे प्यार करें, उसे सहलायें; इससे तनाव कम होता है तथा मानसिक शान्ति मिलती है।

• घरमें अनावश्यक एवं टूटे-फटे सामान न रखें उन्हें बाहर कर दें, शेष बचे सामानको साफ करके व्यवस्थित रखें, इससे आपका मन काफी हलका महसूस होगा।

• हमेशा अपनेको किसी न किसी कार्यमें व्यस्त रखें, क्योंकि कहा भी गया है कि ***'खाली दिमाग शैतानका घर होता है।'***

• प्रातःकाल तेज गतिसे चलने या तैराकी करनेसे भी तनाव कम होता है, खुशी महसूस करें, पानीसे खेलें और मस्त रहें।

• अपने गुजरे हुए अतीतके लमहोंको यादकर वर्तमानमें खुश होनेकी कोशिश फोटो, एलबम आदिके माध्यमसे करें। वर्तमानसे उसकी तुलना न करें।

• सुबह एवं शाम अपने धर्मके अनुसार इष्टदेवकी पूजा, अर्चना या मनकी एकाग्रताहेतु साधन अपनायें।

• अपने नजदीकी दोस्तों, रिश्तेदारों, सगे-सम्बन्धियोंसे निरन्तर बात करनेका सिलसिला जारी रखा करें; क्योंकि अपने मनकी बातोंको शेयर करनेसे मानसिक चिन्ता कम होती है।

• मन और शरीरपर नियन्त्रण बनाये रखनेके लिये प्राणायाम करना परम लाभकारी प्रमाणित हुआ है।

• हमेशा अपने भोजनमें विटामिन बी-१, बी-२, बी-६, बी-१२, ई, सी, फॉलिक एसिड, ग्लूकोज एवं आवश्यक खनिज तत्त्व आयरन, जिंक, कैल्शियम, सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, फ्लोराइड, सेलेनियम, कॉपर, आयोडीनयुक्त आहार-विहार ग्रहणकर मानसिक स्वस्थताका लाभ प्राप्त करना चाहिये।

• हमेशा दिल खोलकर हँसना चाहिये; क्योंकि जिस प्रकार नालीकी सफाई पानीसे होती है उसी प्रकारसे हँसनेसे मनका अवसाद, तनाव, उदासी दूर होती है।

• हँसना जीवनका सौरभ है। हँसता, मुसकराता चेहरा निरोग व्यक्तित्वका प्रतीक है। चेहरेपर आयी मुसकराहट मनकी मलिनता, दुःख और अवसादोंको मनमें अधिक देरतक नहीं ठहरने देती।

• भावनात्मक दोषों, ईर्ष्या, क्रोध, मानसिक तनाव, उत्तेजना, निराशा, उदासी, प्रतिशोध आदि भावनाओंका शोधन हँसनेसे हो सकता है। वास्तविक रूपसे हँसना इन विषयोंमें एक चमत्कारी उपाय भी है।

• योगशास्त्रियोंका अभिमत है कि हँसनेसे खून साफ होता है, उम्र बढ़ती है, चेहरेपर कान्ति आती है तथा बुद्धिका विकास होता है।

• चोरी-छिपे न हँसें। घनिष्ठ सम्बन्धोंमें हँसना मर्यादित रूपमें रहे, जिससे आप भी हँसीके पात्र न बन जायँ। अतः हमें अपनी मानसिक स्थितिको काबूमें रखना चाहिये, जिससे हम शारीरिक या मानसिक रोगोंसे बच सकें।

कहानी—

बलिदानकी परम्परा

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

राजस्थानकी भूमि वीर-प्रसविनी कहलाती है। चित्तौड़का यश तो सर्वविदित है। भूतपूर्व जोधपुर रियासतमें अनेक वीर पैदा होते रहे हैं, जिनकी गाथाएँ उन क्षेत्रोंके चारण गद्‌गद होकर आज भी गाते हैं। बाबा रामदेव, वीर दुर्गादास और प्रणवीर बापूजी राठौड़का नाम आज भी अमर है। सन् १९६२ ई० में मेजर शैतान सिंह चीनी आक्रमणकारियोंसे बहुत बहादुरीके साथ देशकी रक्षा करते हुए शहीद हो गये थे। उसी मरुधाराकी 'ढारियों' की एक छोटी-सी राजपूत-बस्ती, वीरपुरीमें एक साधारण परिवार है, जहाँकी यह परम्परा चली आ रही है कि प्रत्येक पुरुष तीस-बत्तीस वर्षकी उम्र पानेसे पूर्व ही किसी-न-किसी युद्धमें वीरगति प्राप्त कर लेता है।

इस परिवारको जोधपुर रियासतसे सिरोपाव, सोना और नगारेकी इज्जत मिली हुई थी। यहाँतक कि दरबारमें जानेपर महाराजा स्वयं खड़े होकर परिवारके सरदारका स्वागत करते थे। कहा जाता है कि इनके पूर्वजोंमें कई ऐसे अद्भुत जुझार पैदा हुए जो सिर कट जानेके पश्चात् भी काफी देरतक हाथमें तलवार लिये युद्ध करते रहे। इसी घरानेके ठाकुर हीरसिंहने प्रथम महायुद्धमें, फ्रांसकी रणभूमिमें जर्मनोंके छक्के छुड़ा दिये थे। स्वयं घायल होकर भी एक दूसरे घायल सिपाहीको कन्धेपर डालकर ले जाते हुए, उसको सुरक्षित स्थानपर पहुँचाते समय दुश्मनकी गोलियोंसे उनका प्राणान्त हो गया।

ठाकुर हीरसिंहकी मृत्युका समाचार उनकी विधवा माँ और पत्नीको मिला तो शोकाकुल माताने सर्वप्रथम यह बात पूछी कि मेरे पुत्रके शरीरमें गोली किस जगहपर लगी, यद्यपि उसको यह पता चल गया था कि किस प्रकार वह जर्मन सिपाहियोंको मौतके घाट उतारता रहा और अन्तमें घायल साथीके प्राण बचाते हुए धोखेसे मारा गया, फिर भी वह अपने शेष जीवनमें इसी सन्तापसे ग्रस्त रही कि उसका पुत्र पीठमें लगी गोलीसे मारा गया, जो उस परिवारके लिये कलंक था।

विधवा माँ और पत्नी मृत ठाकुरके मासूम बच्चेपर सारी आशाएँ केन्द्रितकर उसे वीरता-भरी कहानियाँ सुनाया करती थीं। जब उसकी आयु तेईस-चौबीस वर्षकी हुई, तो द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो चुका था। जोधपुरनरेशके बुलानेपर युवक भूरसिंह परिवारकी परम्पराके अनुसार दादी, माता और पत्नीके पास विदा लेने गया। विदा करते हुए माँने कहा, 'बेटा, मुझे एक सन्ताप आज भी खाये जा रहा है, यद्यपि तेरे स्वर्गीय पिताको यथेष्ट यश मिला था, किंतु उनकी मृत्यु पीठपर गोली लगनेसे हुई। अत: यह ध्यान रखना कि इसकी पुनरावृत्ति न हो। पित्रेश्वरोंके आशीर्वादसे तुम्हें विजयश्री प्राप्त हो, मेरी कोख एवं परिवारके नामको उज्ज्वल करना।'

युवक भूरसिंहने अपने पितासे भी ज्यादा यश प्राप्त किया। सैकड़ों दुश्मनोंको इटलीके रणक्षेत्रमें मौतके घाट उतारकर वह वीरगतिको प्राप्त हुआ। उसकी गोलियोंसे छलनी हुई लाशको शत्रु-सेनाके अफसरोंने भी श्रद्धाके साथ मस्तक झुकाकर सलामी दी और सम्मानपूर्वक उसे दफना दिया गया।

भूरसिंह जब घरसे चला था, तो पत्नी गर्भवती थी। उसकी मृत्युके समय बालक पुत्रकी आयु केवल दो वर्ष की थी। सरकारी पेंशनसे किसी प्रकार घरका निर्वाह होता रहा। वैसे उनकी थोड़ी-सी जमीन भी थी, किंतु खेतीको देखनेवाला परिवारमें कोई पुरुष सदस्य नहीं था, अत: जो कुछ बँटाईसे प्राप्त होता, उससे गुजारेमें मदद मिल जाती थी।

बचपनसे ही बालक बड़ा हृष्ट-पुष्ट था, इसलिये उसका नाम रखा गया जोरावर सिंह। दस सालकी उम्रमें जोरावर सिंहमें इतनी ताकत और हिम्मत थी कि स्कूलमें

अपनेसे दुगुनी उम्रके लड़कोंको पछाड़ दिया करता था, फलतः आसपासके गाँवोंमें उसके बलके बारेमें कई प्रकारकी किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गयीं। उन बातोंको सुनकर विधवा माँका हृदय सदैव भयभीत रहता था। वह पुत्रको सैनिक स्कूलमें भर्ती न करवाकर घरपर ही दूसरे प्रकारकी शिक्षा दिलाना चाहती थी, परंतु जोरावरसिंह माँसे बिना कुछ कहे, एक दिन छुपकर घरसे चल दिया और सैनिक-स्कूलमें भर्ती हो गया। स्कूलसे उसने अपनी विधवा माँको पत्र लिखा, 'यद्यपि देश स्वतन्त्र हो गया है, पर हमारी उत्तरी सीमापर दुश्मन चढ़ आया है। इस हालतमें भारतमाताको किसी भी समय वीरोंके बलिदानकी आवश्यकता हो सकती है और यदि उसमें सर्वप्रथम हमारे परिवारका योग न रहा, तो आपकी कोखसे मेरा जन्म लेना ही व्यर्थ होगा।' पत्र पढ़ते समय माँकी दाहिनी आँख फड़क रही थी, फिर भी उसने आशीर्वादसहित जोरावरको सैनिक शिक्षाकी मंजूरी दे दी। प्रबल इच्छा थी कि उसे लड़ाईमें जानेका अवसर मिले, परंतु यह इच्छा पूर्ण हो, इसके पहले ही युद्ध विराम हो गया।

कुछ अर्से बाद पाकिस्तानने हमारे देशपर हमला किया। काश्मीर, पंजाब तथा राजस्थानके बाड़मेरकी सीमाओंपर हमलावरोंको रोकनेके लिये जिन फौजोंको भेजा गया था, उनमें एक टुकड़ीका नायक था युवक जोरावरसिंह। मोर्चेपर जानेसे पूर्व वह माँसे मिलने अपने गाँव आया।

विदाके समय माँको 'असगुन' हो रहे थे। बहुत यत्न करनेपर भी वह अपने आँसू न रोक सकी। उसने अपने पुत्रको छातीसे लगाकर आशीर्वाद दिया और इतना ही कहा, 'बेटा! मुझसे बड़ी तुम्हारी भारत-माँ है, उसपर आज दुश्मनोंने हमला किया है। कुलदेवता तुम्हें विजयी बनायेंगे, परंतु याद रखना, अगर युद्धमें वीरगति प्राप्त हो, तो दुश्मनकी गोली पीठमें न लगे।'

मरुभूमि-बाड़मेरके सूने इलाकेमें सिर्फ सात अन्य जवानोंके साथ इस बहादुर रण-बाँकुरेको एक सीमा चौकीकी रक्षाका भार सौंपा गया। युद्धका अधिक जोर कश्मीर और पंजाबकी सीमापर ही था, अतः राजस्थानके इस वीरान इलाकेमें थोड़े-से सिपाहियोंको साधारण हथियार तथा गोलियाँ देकर ही तैनात कर दिया गया था।

सितम्बरके दूसरे सप्ताहमें एक दिन अचानक ही इस चौकीपर सत्तर-अस्सी पाकिस्तानी सिपाहियोंने गोला-बारूद और हथियारोंसे लैस होकर हमला बोल दिया। दुश्मनके बहुत-से सिपाही मौतके घाट उतार दिये गये, पर इस ओर भी केवल तीन ही जवान शेष बचे। वे बुरी तरह घायल हो चुके थे तथा उनकी गोलियाँ भी समाप्त हो गयी थीं।

जोरावरसिंह घायल-अवस्थामें ही दो बार मरे हुए दुश्मनोंके पास जाकर उनके हथियार तथा गोला-बारूद लानेमें सफल हुआ, परंतु तीसरी बार आगे बढ़ते ही सामनेसे शत्रु-दलने उसपर एक साथ गोलियोंकी बौछार शुरू कर दी और वह बेहोश होकर गिर गया। कुछ समय पश्चात् हमारी दूसरी चौकीके सिपाही वहाँ पहुँच गये और उनको देखकर बुजदिल पाकिस्तानी हमलावर भाग गये। इस समयतक जोरावरसिंहको भी कुछ होश आ चुका था, परंतु उसके शरीरसे इतना खून निकल गया था कि वह अन्तिम साँसें ले रहा था।

मरते समय उसने अपने साथियोंसे कहा, 'गोलियाँ सीनेमें लगी हैं।··· अगर सम्भव हो तो मेरी लाशको मेरे गाँव भेज देना; क्योंकि मेरी माँने कहा था···। मैं चाहता हूँ कि मेरी माँ देखे कि मैंने कुलकी परम्पराका पूर्णतया पालन किया है···।' इतना कहनेके पश्चात् उसका शरीर शान्त हो गया। पासमें खड़े उसके साथी सिपाहियोंने देशके प्रति कुर्बान हुए उस शहीदको सैनिक सलामी दी।

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

भक्त-चरित—

भक्त रामप्रसाद

(संत श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

जिस प्रकार वसन्तागमनके समय सभी वृक्ष आप-से-आप पल्लवित और पुष्पित हो जाते हैं, उसी प्रकार भगवान्‌की प्रबल भक्ति उत्पन्न होनेपर सभी गुणोंका विकास स्वत: ही हो जाता है। यदि भक्त पूर्ण भावुक है, उसकी लगन सच्ची है, उसकी निष्ठामें किसी प्रकारकी दुविधा नहीं है, तो उसे न तो राजयोगके अभ्यासकी आवश्यकता है और न नेती-धोती आदि हठयोगकी षट् क्रियाएँ करनेकी जरूरत है। उसे सुप्त पड़ी हुई कुण्डलिनीको जाग्रत् करनेके लिये तीनों बन्दोंको लगाकर अहर्निश अजपाका जाप नहीं करना होगा। उसकी कुण्डलिनी स्वयं ही जाग्रत् हो जायगी। उसे अनहद नाद सुननेके लिये कानोंको नहीं मूँदना होगा, अपितु वह चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते सदा ही अनहदकी ध्वनिमें मस्त रहेगा। वह यदि संसारमें रहे तो भी तैसा और न रहे तो भी तैसा। वह सदा जनसंसदिमें रहता हुआ भी उनसे परे ही रहेगा। इसी प्रकारके भक्ति-योगके साधकको अनन्य भक्त कहते हैं। भक्त-प्रवर श्रीरामप्रसादजी इसी प्रकारके अनन्य भक्तोंमेंसे एक भक्त हो चुके हैं।

वंश-परिचय और जन्म

भगवती भागीरथीके तटपर 'कुमार हट्ट' या कुमार हाटी नामका एक बहुत प्राचीन ग्राम था। यह ग्राम हालि नगरके अन्तर्गत था। जिस प्रकार प्राचीनकालके अनेक बड़े-बड़े शहर और नगर समयके परिवर्तनके साथ-ही-साथ कालके गालमें समा गये। उसी प्रकार कुमार हाटीका भी केवल नाम-ही-नाम शेष है। इतिहासके पृष्ठोंको छोड़कर अब उस स्थानका नाम भी शेष नहीं रहा। उसी कुमारहाटी नामक ग्राममें एक मध्यवित्त वैद्य परिवार निवास करता था। बंगालमें वैद्य एक जाति है। इस जातिकी गणना द्विजोंमें की जाती है। ये लोग यज्ञोपवीत धारण करते हैं और इनके आचार-विचार उच्च वंशके हिन्दुओं-जैसे हैं। उसी वैद्यकुलमें हमारे चरितनायक भक्तप्रवर श्रीरामप्रसादजीने जन्म लिया।

बाल्यकाल

रामप्रसादके पिताका नाम रामसेन था। ये अपने पिताके इकलौते लड़के थे। इस हेतु इनके पिता इनपर बहुत अधिक अनुराग रखते थे। रामप्रसाद बालकपनसे भावुक तथा तीक्ष्ण बुद्धिके थे। उन दिनों भारतवर्षमें मुसलमानोंका आधिपत्य था। इसीलिये आजकल जिस प्रकार अँगरेजीका बोलबाला है, उन दिनों उसी प्रकार फारसीका बोलबाला था। पिता अपने पुत्रको फारसीकी शिक्षा दिलानेमें अपना गौरव समझता था। रामप्रसादने भी उस समयकी प्रचलित पद्धतिके अनुसार बाल्यकालमें फारसीकी शिक्षा पायी। बँगला तो इनकी मातृभाषा ही थी, इसके अतिरिक्त इन्होंने संस्कृतमें भी थोड़ा-बहुत अभ्यास किया था। लोगोंका कथन है कि इन्होंने १६ वर्षकी अवस्थामें ही अपने कवि होनेका परिचय दिया था। रामप्रसादके पूर्वज शाक्त थे, अत: इनकी भी स्वाभाविक प्रीति कालीमाई में ही थी, इनका झुकाव तन्त्रशास्त्रकी ओर विशेष था।

पारिवारिक जीवन

रामप्रसादजीके पारिवारिक जीवनके सम्बन्धमें कुछ विशेष वृत्त नहीं मिलता। इनकी माता इन्हें छोड़कर कब स्वर्ग सिधारीं, इसका कुछ ठीक-ठीक पता नहीं, किंतु अनुमानसे यही जाना जाता है कि इनके पिता इन्हें

बाल्यकालमें पितृविहीन करके इस लोकसे सदाके लिये चल बसे होंगे। वे अपने पीछे अपने पुत्रके निर्वाहके लिये कुछ विशेष पूँजी भी नहीं छोड़ गये थे। अत: रामप्रसादको छोटी ही अवस्थामें अपनी रोजीके लिये चिन्ता करनी पड़ी। इनका विवाह अवश्य हुआ था, किंतु यह पता नहीं कि वह कब और किस अवस्थामें हुआ था। हाँ, इतना अवश्य जाना जाता है कि इनकी स्त्री परम साध्वी, पतिव्रता और इनकी ही भाँति काली माईकी अनन्य उपासिका थीं। एक महापुरुषने कहा है—'जिस गृहस्थकी स्त्री साध्वी और पतिपरायणा है, उसके लिये फिर संसारमें किस वस्तुका घाटा है और जिसकी स्त्री उसके अनुकूल नहीं तो उसके पास है ही क्या?' सौभाग्यसे रामप्रसादजीकी स्त्री इनके अनुरूप ही थी। इन्होंने एक भजनमें स्वयं ही अपनी पत्नीकी प्रशंसा की है—

धन्य दारा स्वप्ने तारा प्रत्यादेश तारे।
आमि कि अधम एत वैमुख आमारे॥
जन्मे जन्मे विकायेछि पद पद्मे तल।
कहिवार कथा नव विशेष कि कव॥

वह स्त्री धन्य है, जिसकी प्रशंसा रामप्रसाद-जैसे भक्त अपने मुखसे करते हैं।

योगक्षेमके निमित्त वृत्ति

पिताके परलोकवासी होनेके अनन्तर रामप्रसादको अपनी गृहस्थी सम्हालनेकी चिन्ता पड़ी। वे अपने गाँवसे नौकरीकी तलाशमें कलकत्ते गये और सौभाग्यसे उन्हें वहाँपर एक बड़े भारी धनिकके यहाँ मुनीमीकी एक छोटी-सी जगह मिल गयी। उसी पदपर नियुक्त होकर ये वहीं खातेका काम करने लगे। बहीमें एक ओर जमा लिखनी होती है और एक ओर खर्च। खर्च प्राय: अधिक होता है और जमाकी तो एक आध ही रकम लिखी जाती है। अत: जमाकी ओरका कागज खाली ही रहता है। रामप्रसाद हिसाब लिखते-लिखते तरंगमें आकर कविता भी बना लिया करते थे और उसे बहीमें खाली जगहमें लिख भी लेते थे। प्राय: वे प्रत्येक पन्नेमें एक-दो भजन लिख देते। एक दिन एक बड़े मुनीमने उनकी बहीका निरीक्षण किया। जब उसने देखा कि रोकड़की बहीको रामप्रसादने भजन लिख-लिखकर खराब कर दिया है तब उसके गुस्सेका ठिकाना न रहा। परंतु वह स्वयं कर ही क्या सकता था? अत: उसने इस बातकी शिकायत अपने मालिकसे की। मालिकने बहीको मँगवाया और उसमें लिखे एक भजनको पढ़ने लगा। बस फिर क्या था, उसने एक बार, दो बार, तीन बार इसी प्रकार कई बार उस अकेले ही भजनको पढ़ा, बार-बार पढ़नेपर भी उसकी तृप्ति नहीं होती थी। उस पदके पढ़नेसे उस धनिकका हृदय भर आया। नेत्रोंमें प्रेमके कारण जल छा गया। उसने रुँधे हुए कण्ठसे कहा—'रामप्रसाद! तुम इस योग्य नहीं हो कि ३० रुपयेकी नौकरीपर रहकर अपनी गुजर करो। माताने तुम्हें वह हृदय दिया है कि एक दिन सभी लोग आपका यशोगान करने लगेंगे। जाओ, अपने घर जाकर अनन्य भावसे काली माईकी वन्दना करो। ३० रुपये मासिक तुम्हें घर बैठे ही मिला करेंगे।'

शिकायत करनेवाला मुनीम सोचता रहा कि मालिक रामप्रसादको क्या दण्ड देंगे? जब उसने देखा कि दण्ड न देकर उलटे मालिक ही इनके सेवक बन गये तब वह कुछ लज्जित हुआ। रामप्रसाद रोजीके झंझटसे सदाके लिये छूटकर अपने घर आये और अनन्य भावसे काली माईकी पूजामें लग गये।

तपस्या

रामप्रसाद सदा कालीमाईके गुणगान ही किया करते थे। ये करालबदना माईके अनन्य भक्त थे। गंगाजीके तटपर ये पंचमुण्डी करते, आसन बनाकर उसपर बैठकर तपस्या किया करते थे। धीरे-धीरे इनकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। इनका गाँव महाराज कृष्णचन्द्रजीके राज्यमें था। कभी-कभी महाराज वायु-सेवनार्थ और अपनी प्रजाकी दशा अवलोकन करनेके लिये कुमारहट्ट आया करते थे। यह स्थान गंगाजीके तटपर होनेके कारण एकान्त, शान्त और मनोरम था। महाराजने अपने निवासके लिये यहाँ एक स्थान बनवा रखा था। अवकाशके दिनोंमें विश्राम करनेके लिये वे कुछ काल यहाँ आकर ठहरते थे। जब इन्होंने

रामप्रसादजीकी प्रशंसा सुनी, तब उन्हें अपने पास बुलाया और इनके भजन सुने। महाराजने इन्हें दरबारी बनानेकी इच्छा प्रकट की, किंतु ये तो काली माईके दरबारी बन चुके थे। एक आदमी दो स्थानोंकी नौकरी थोड़े ही कर सकता है। अत: इन्होंने महाराजसे निर्भीकतापूर्वक स्पष्ट मना कर दिया। इसपर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें 'कविरंजन' की उपाधि प्रदान की। कवि और भक्त तो भावके भूखे होते हैं। जब महाराजकी इन्होंने अपने ऊपर ऐसी प्रीति देखी, तब इन्होंने भी उनके सम्मानके लिये 'विद्यासुन्दर' नामक एक ग्रन्थ उनके लिये बनाया, जिसे सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए।

अन्य साधु-महात्मा तथा भक्तोंकी भाँति इनके सम्बन्धमें भी बहुत-सी कथाएँ कही जाती हैं। उनमेंसे दो-तीन कथाएँ हम यहाँ लिखते हैं—

कुछ प्रचलित कथाएँ

(१)

एक बार ये बाड़ा बाँध रहे थे। हाथ तो यन्त्रकी भाँति काम कर रहे थे, इनका मन महामायाके चरणोंमें था। ये बाह्य ज्ञान शून्य होकर बाड़ेको बाँधते जाते थे। इनकी बड़ी लड़की बाड़ेके ऊपर बैठी हुई इन्हें बाड़ा बाँधनेके लिये रस्सी देती जाती थी और ये बाह्य ज्ञान शून्य अपनी धुनमें मस्त होकर बाड़ा बाँध रहे थे। लड़की किसी आवश्यक कार्यसे बाड़ेको छोड़कर घर चली गयी।

बहुत देर बाद जब वह लौटकर आयी, तब उसने देखा कि पिताजी तो बहुत अधिक बाड़ा बाँध चुके हैं। उसने आश्चर्यचकित होकर पूछा—'आप इतना अधिक बाड़ा बाँध चुके, किंतु यह बताइये कि आपको रस्सी कौन देता गया?' इसपर रामप्रसादजीने जवाब दिया—'तू ही तो रस्सी दे रही थी? उसने कहा—'मैं तो बड़ी देर हुई, तबकी घरमें थी। मैं तो घरसे अभी-अभी चली आ रही हूँ।' इसपर रामप्रसादजीने कहा—'यदि तू न होगी तो साक्षात् जगदीश्वरी ही मेरी सहायता कर रही होंगी।' यह कहते-कहते वे प्रेममें मग्न होकर माताके गुणानुवाद गाने लगे और प्रेममें तल्लीन होनेके कारण बेसुध हो गये।

(२)

एक बार ये गंगाजीमें स्नान करनेके लिये गये हुए थे। इतनेहीमें एक स्त्री इनके यहाँ आयी। उसने रामप्रसादके सम्बन्धमें पूछा और अपना परिचय दिया कि 'मैं बड़ी दूरसे उनका गाना सुनने आयी हूँ। यदि वह आ जाय तो उसे मेरे पास भेजना, मैं कालीमण्डपमें बैठी हूँ।' यह कहकर वह चली गयी। रामप्रसादजी जब गंगाजीसे लौटकर आये, तब घरवालोंने उस स्त्रीकी कही हुई सभी बातें रामप्रसादसे कहीं। यह सुनकर रामप्रसाद चण्डीमण्डपमें गये, किंतु वहाँ किसी स्त्रीको नहीं देखा। वहाँपर दो लड़कियाँ खेल रही थीं। रामप्रसादने जब उन लड़कियोंसे उस स्त्रीके सम्बन्धमें पूछा, तब उन्होंने कहा—'हाँ, एक स्त्री आयी तो थी। वह बैठी भी रही फिर यह कहकर चली गयी कि रामप्रसाद आये तो उसे काशी भेज देना।' यह सुनते ही रामप्रसादने समझा कि साक्षात् अन्नपूर्णा ही काशीसे मेरा गाना सुनने आयी थीं। यह सोचकर वे गीले कपड़ोंको पहने ही काशीजीको चल दिये।

रास्तेमें त्रिवेणीके पास वे किसी गाँवमें ठहरे थे, तभी माताने इनसे स्वप्नमें कहा—'रामप्रसाद! तुम यहीं बैठकर मुझे अपना गाना सुनाओ।' तब रामप्रसादने वहीं अपना गाना सुनाया।

पारमार्थिक विचार

रामप्रसाद शाक्त थे। वे संसारमें चारों ओर अपनी माँको ही नृत्य करते हुए देखते थे। माँके पास पहुँचनेका, उससे सायुज्य प्राप्त करनेका वे एकमात्र उपाय अनन्य भावसे भक्ति करना ही बताते थे। माँ चारों ओर नृत्य कर रही है, प्रत्येकके घट-घटमें माँ जगज्जननी लीला कर रही है। वह अहर्निश ताण्डव नृत्य करती रहती है। जिसने सांसारिक भ्रमोंको छोड़कर उस विकरालबदना माईके नृत्यका मर्म जान लिया है, संसारमें वे धन्य हैं। हृदयमें सच्ची लगन होनी चाहिये। माँ प्रत्यक्ष होकर उसे दर्शन देंगी। मोहमें फँसे हुए प्राणियोंको माताका असली स्वरूप नहीं दीखता, जिन्होंने साधनके द्वारा मनको थोड़ा भी वशमें कर लिया है, लीलामयी माँकी लीला उसे प्रत्यक्ष दीखने लगती है। निम्नलिखित भजनमें उन्होंने

कितनी सुन्दरतासे माँकी महिमा वर्णन की है—

दोले दोले रे आनन्दमयी कराल बदनी।
आमार हृद् कमल-मध्य दोले दिवस रजनी॥
इड़ा पिंगला नामा, सुषुम्ना मनोरमा।
तार मध्ये नाचे श्यामा, ब्रह्म सनातनी॥
आविर कुंकुम पाय, किवा शोभा ये छेय ताय।
कामादि मोह पाय, हेरिले अमनि॥
ये देखे छे मायेर दोल, से पेये छे मायेर कोल।
द्विज रामप्रसादेर बोल, दोल माँ भवानी॥

उपसंहार

रामप्रसाद अपने समयके अद्वितीय भक्त और परम-भावुक कवि थे। इसमें सन्देह नहीं कि जिसके हृदयमें तनिक भक्ति-भावका अंश हो, वह रामप्रसादके भक्ति-भावपूर्ण भजनोंको सुने तो फड़क न उठे। कविमें अन्य गुणोंकी अपेक्षा अनुभूतिकी बड़ी भारी आवश्यकता है। जो अनुभव नहीं करता, जिसके हृदयमें गहरी वेदना नहीं होती, वह भला कवि कविता क्या करेगा खाक? रामप्रसादका हृदय अनुभव करता था एवं अपनी इन्हीं आँखोंसे माँकी सम्पूर्ण लीलाओंको प्रत्यक्ष देखता था, तभी तो उसने ऐसा अद्भुत वर्णन किया है। जिसने रामप्रसादका एक बार भी गायन सुन लिया, वही प्रेममें मस्त हो गया।

एक बार रामप्रसाद महाराज कृष्णचन्द्रजीके साथ मुर्शिदाबाद गये थे। उन दिनों बँगालमें नवाब सिराजुद्दौलाका आधिपत्य था। एक दिन महाराजके साथ रामप्रसाद नावमें बैठे गा रहे थे कि संयोगसे नवाब साहब भी नावपर बैठकर उधर ही आ निकले। जब उन्होंने रामप्रसादका अपूर्व गाना सुना, तब वे मुग्ध हो गये। उन्होंने रामप्रसादको अपनी नावपर बुलाकर गानेके लिये कहा। नवाबके कथनानुसार ये हिन्दीमें गाने लगे, तब नवाबने कहा—'नहीं, आप नावपर जिस गीतको गा रहे थे, उसे ही सुनाइये। तब तो रामप्रसादने काली माईका वही गीत सुनाया। उसे सुनकर नवाब प्रेममें गद्गद होकर वाह-वाह करने लगे।

इस भक्ताग्रगण्य महापुरुषकी जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथिका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। विद्वानोंका अनुमान है कि इनका जन्म शाके १६४० या १६४५ के लगभग हुआ होगा। अनुमानसे जाना जाता है कि ये ६० वर्षतक इस धराधामपर रहकर कालीमाईका गुणानुवाद गाते रहे होंगे। इससे इनकी मृत्यु शाके १७०० के लगभग अनुमान की जाती है। इनके बनाये हुए 'कालीकीर्तन'। 'कृष्णकीर्तन' और 'विद्यासुन्दर' ये तीन ग्रन्थ बताये जाते हैं, जिनमें कालीकीर्तन ही बहुत प्रसिद्ध है।

इनकी मृत्युके सम्बन्धमें यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि जब इन्होंने अपना अन्त समय निकट देखा तब काली-विसर्जनके दिनोंमें अपने सम्बन्धियोंसे इन्होंने कहा—'अबके कालीविसर्जनके साथ-ही-साथ हमारा भी विसर्जन है।' इतना कहकर ये प्रार्थना करते हुए कालीकी प्रतिमाके पीछे-पीछे जाने लगे। थोड़ी ही देरमें देखते-देखते इनका प्राण-पखेरू दशम द्वारको फोड़कर अपने सत्य स्वरूपमें जा मिला।

ये असलमें प्रेमके पागल थे। माताके प्रेममें ये दीवाने होकर चला करते थे। एक दिन ये पागलोंकी भाँति रास्तेमें चल रहे थे। पासमें बैठे हुए एक सज्जनने कहा—'महोदय! क्या आपने सुरापान कर रखी है, जो मतवालोंकी भाँति चलते हैं?' बस, इसीपर आपने यह भजन कहा—

सुरापान करिने आमि, सुधा खाइ जय काली बोले।
मन-माताल मेते छे आमि, मद माताले माताल बोले॥
गुरु दत्त गुड़ लये, प्रवृत्ति मसला दिये।
(आमार) ज्ञान शुड़िते-चुपाये भाटी,
पान करे मोर मन-माताले॥
मूलमन्त्र यन्त्र भरा, शोधन करि बोले तारा (मा)।
(राम) प्रसाद बोले अमन सुरा खेले चतुर्वर्ग मिले॥

धन्य-धन्य हो मतवाले! तुम्हारे इस नशाकी बलिहारी है। हम-जैसे पामर जीवोंको भी यदि इसमेंसे एक प्याला मिल जाय तो अपने इस क्षुद्र जीवनको सार्थक समझें। माँके लाड़िले सुपूत! जगदम्बासे हम-जैसे अधमोंकी ओरसे भी कुछ प्रार्थना कर देना।

श्रीराधाजन्म-लीलाप्रसंग

(श्रीसुरेन्द्रजी त्रिपाठी 'ब्रजरजआश्रित')

*[ब्रजरजआश्रित एक भक्तने 'श्रीराधाचरितचन्द्रिका' नामसे एक महाकाव्यकी रचना की है, जिसमें पराम्बा भगवती श्रीराधाजीका चरित-चित्रण हुआ है, इसके कुछ अंश यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं—**सम्पादक**]*

महिमा दिव्य, अनन्त शक्ति वैभव कारुण्य ममतामयी।
सर्वेश्वरि परब्रह्मसुख प्रदायिनि श्रीकृष्ण आह्लादिनी॥
लीला मधुर विधायिनी, सुरसिके गोलोक धामेश्वरी।
वन्दे मानव रूपिणी ब्रजेश्वरि श्रीराधिका स्वामिनी॥

सोरठा

ब्रज मण्डल शिर नाय, करी कथा प्रारम्भ शिव।
प्रेम न हिये समाय, छलकि उठो दृग नीर बनि॥
ब्रजमण्डल को प्राण, श्रीराधा अवतार यह।
हारे वेद पुराण, भये मौन बरनो नही॥

छन्द

भयो जनम मंगल लाड़िली को दिव्य अति आँनद महा।
आया अजन्मा जन्म ले जिसके लिये ब्रज में यहाँ॥
शिशु रूप लखि मंगल मनाये, गोप, गोपी, ग्वालनें।
ह्वै मुदित 'ब्रजरजआश्रित' मैया झुलावैं पालनें॥

दोहा

मंगल हू माँगति जहाँ, निज मंगल की भीख।
ऐसो उत्सव जनम को, अनत, कहूँ नहिं दीख॥

मथुरा निकट जमुन तट पावन। राजति रावल नगर सुहावन॥
कीरति भानु बसहिं नृप दम्पति। गेह लक्षदस जिन गौ सम्पति॥
धर्म, वित्त, गुण, शील, निधाना। विनयवान निज नगर प्रधाना॥
महल, बाग, उपवन वन स्वामी। भार्या कीरति मन अनुगामी॥
वित्तवान सब गोप समाजा। अस धर्मज्ञ प्रजा जस राजा॥
सरल चित्त मानैं गो देवा। बनि गोपाल करत नित सेवा॥
गोसेवा की अस प्रभुताई। मंगल होय कुयोग नसाई॥
बहुत काल एहि भाँति बितायो। गोसेवा फल अवसर आयो॥
सो प्रसंग सुनु शैलकुमारी। जिमि जनमी बृषभानुदुलारी॥
ऋषि, मुनि, पण्डित, विप्र, पुजारी। तोषति सबै कीर्ति सत्कारी॥
व्रत बृषभानु एक दृढ़ ठाना। नित प्रति करत जमुन स्नाना॥
विगत निशा उठि जमुना जावैं। सादर पूजैं बहुरि नहावैं॥
भाद्र शुक्ल सप्तमी प्रभाता। लखेउ प्रवाह जात जलजाता॥
प्रविशि धार गहि कंज प्रसूना। लौटे भानु मोद हिय दूना॥
दिव्य पुष्प जगमग द्युतिकारी। मोहे अद्भुत छटा निहारी॥
कंज प्रसून गहे कर माहीं। चले हरषि गृह कीरति पाहीं॥

दोहा

अति सुगंध, अति रंग, द्युति, लीन्हे भानु समोद।
आनि धरो सनमान करि, कीरति जू की गोद॥

× × × ×

छन्द

नृप भानु दुलारी, कीर्ति कुमारी प्रकट भयीं बृषभानु लली।
लाड़िली हमारी, जग उजियारी जनु विकसी मृदु कंज कली॥
रसराज बिहारी, की निज प्यारी, ह्लादिनी शक्ति स्वरूपा हो।
अति ही सुकुमारी, रावलवारी प्रकट प्रेम रस रूपा हो॥
गोलोक निवासिनि, हरि हिय वासिनि राधे कृष्णानन्द मयी।
विभु, अज, अनन्त, व्यापक दिगन्त, सो मूल प्रकृति ब्रज प्रकट भयी॥
तुम निराकार, तुम निर्विकार, हे भक्त जनन हितकारी हो।
कलिकल्मष हारिणि, भव भय तारिणि, गिरधर प्राणपियारी हो॥
अहिपति, श्रुति, शारद, गावत नारद, शिव, शुक ध्यान अगम्या हो।
छवि छैल छबीली, अति अलबेली, गौर सुवरण सुरम्या हो॥
लावण्य अनूपा, कृष्ण स्वरूपा रसिक जीवनी श्रीराधा।
शिशुरूप रँगीली, सुघढ़ सजीली, सुमिरत विनसति हैं बाधा॥
वह नैन धन्य, वह बैन धन्य, जिन देखा जिन ने गुण गाया।
वह ब्रज अनन्य, ब्रजरज अनन्य, जहँ प्रकटीं जिसको अपनाया॥
कलि जीव निराश्रित, 'ब्रजरजआश्रित' भजत तोहि गोलोक लहैं।
जो तुम को ध्यावत शुभ गति पावत, कृष्ण हरषि तेहि बाँह गहैं॥

दोहा

बरसि सुमन गावत सुयश सुर मन मानत मोद।
गये कहत धनि धनि जगत, कीरति माँ की गोद॥

श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग—

मेरी माँकी रक्षा करना

[श्रीराम शत्रुघ्नके प्रति]

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत्।
मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति॥
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन।
इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्ज ह॥

(वा०रा० अयोध्याकाण्ड ११२। २७-२८)

श्रीभरत राघवेन्द्र रामकी रत्नजटित पादुकाओंको मस्तकपर धारणकर उस गजराजकी ओर चल पड़े, जो राज्याभिषेकसे पूर्व श्रीरामको अयोध्यापुरीके प्रधान देवालयोंमें प्रतिष्ठित प्रमुख देवताओंके पूजन-अर्चनहेतु ले जानेके लिये निश्चित किया गया था। उसपर कसी हुई स्वर्णिम शिविकाकी प्रमुख वेदीपर श्रीरामकी पादुकाओंको विराजमानकर, स्वयं उनपर चँवर ढुलाने लगे। शत्रुघ्न द्वादशादित्यमण्डित छत्र लेकर उनके पीछे खड़े होने जा ही रहे थे कि श्रीराम उन्हें बुलाकर एक ओर ले गये। अत्यन्त स्नेहसे उनके दोनों हाथ अपने हाथोंमें लेकर, नेत्रोंकी कोरोंमें छलकनेको आकुल जल-बिन्दुओंको छिटकते हुए बोले—

वत्स शत्रुघ्न! मेरा भैया भरत अत्यन्त सरल है, किंतु इस समय वास्तविकतासे अपरिचित होनेके कारण उसका चित्त मेरी माता कैकेयीके प्रति अत्यन्त कठोर हो गया है। उसकी यह स्थिति कहीं सेवकों-अनुचरोंके हृदय भी मलिन न कर डाले। वे माताके प्रति कहीं अविनीत न हो जायँ। उनकी अवहेलना न करने लगें। मुझे यही भय पीड़ित कर रहा है। ऐसे दुर्भाग्यपूर्ण दृश्य—जिन्हें उचित नहीं कहा जा सकता, वे तुम्हें सम्भवत: जाते ही देखनेको मिलेंगे। उनका निदान तुम्हें समयानुसार-पात्रानुसार प्यारसे, दुलारसे, फटकारसे भी करना पड़ेगा। तुम नित्य रात्रिको माँकी चरण-सेवा किये बिना शयनागारमें कदापि न जाना। श्रुतिसे कहना कि वह नित्य माँके पास जाकर चरण-स्पर्शकर पूछे कि आज पाकालयमें उनके लिये कौन-सा पदार्थ बनवाये।

'मैं जानता हूँ कि वे न कभी किसी पदार्थका नाम लेंगी और न ही चरण-सेवा करायेंगी, किंतु तुम दम्पती इस व्रतका पालन नियमित रूपसे उसी प्रकारसे करना जैसे कुलगुरु सूर्यदेव बिना किसीकी अभ्यर्थनाके कमल-वनको प्रमुदित करनेके लिये प्राचीद्वारसे गगनके प्रांगणमें पदार्पण करते हैं।'

श्रीरामके सजल नेत्रोंको सजल नेत्रोंसे, उनकी आज्ञापालनका निरालस्य आश्वासन देते हुए शत्रुघ्न शीघ्रतापूर्वक चल पड़े।

रामकी कथा

(डॉ० श्रीरोहिताश्वजी अस्थाना)

गागर में सागर है राम की कथा।
व्याप्त हुई घर-घर है राम की कथा॥
वेद-मंत्र जैसी हर पंक्ति पावनी।
जीवन का नव-स्वर है राम की कथा॥
तुलसी ने अवधी के वस्त्र दे दिये।
विदुषी यह सुंदर है राम की कथा॥
धर्मों-कर्तव्यों का कोश बन गई।
एक मील पत्थर है राम की कथा॥

जिसकी गति शाश्वत है लोक-लीक पर।
मंगल मय निर्झर है राम की कथा॥
सारे भव रोगों में राम बाण सी।
औषधि का आगर है राम की कथा॥
कवियों के हेतु कथा वस्तु दायिनी।
भाव भूमि उर्वर है राम की कथा॥
धर्म, जाति, देश के विचार से परे।
ऐक्य मंत्र भास्वर है राम की कथा॥

गोपालन और गोचर भूमि

(प्रो० डॉ० श्रीबाबूलालजी, डी० लिट०)

महाभारतमें यक्ष-युधिष्ठिर-संवादमें यक्षने युधिष्ठिरसे यह प्रश्न किया कि '**अमृतं किं स्विद् राजेन्द्र**'—संसारमें अमृत क्या है? तब युधिष्ठिरने उत्तर दिया—'**गवामृतम्**'—गोदुग्ध ही संसारमें अमृत है। जबकि वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध कर दिया है कि गोमांस विष है। भारतमें गोपालनकी प्राचीनकालसे ही परम्परा रही है। इसीलिये इस देशमें घी और दूधकी नदियाँ बहती थीं। ऋषियोंके आश्रम जंगलोंमें होते थे। वहाँ हजारों गायें स्वतन्त्र रूपसे विचरण करती थीं और जंगलोंमें चरती थीं। भारत प्रकृति-प्रधान, कृषि-प्रधान और धर्म-प्रधान देश है। यह विडम्बनाकी बात है कि इस देशमें आज तीनोंकी दुर्गति हो रही है। अंग्रेजी शासनमें अन्धाधुन्ध वनोंका विनाश किया गया और यही गति स्वतन्त्र भारतमें आज भी विद्यमान है। हिमालयके ग्लेशियर पिघल रहे हैं और पर्वतीय वन भी नष्ट हो रहे हैं, जो गायोंकी गोचर भूमि होती थी। आज गोचर भूमि लगभग समाप्त हो गयी है।

प्रमुखतया भारत कृषिप्रधान होनेके कारण गाँवोंका देश कहलाता है। गाँवके लोगोंकी आयके तीन साधन थे—अन्न उत्पादन करना, पशुपालन (गोपालन) और वृक्षारोपण। कृषि भूमिके अतिरिक्त प्रत्येक गाँवोंमें शामलात भूमि होती थी, जिसे गऊचरांद या गोचर भूमि कहा जाता था। गायोंके बैठने और चरनेके भिन्न-भिन्न स्थान थे। उनके बैठनेके स्थानको गौरा कहा जाता था। जहाँ प्रात:काल गाय एकत्रित होती थी और वहींपर उनका गोबर ग्वालोंद्वारा इकट्ठा किया जाता था, जो खेतीके लिये खादके रूपमें प्रयोग किया जाता था। जिस भूमिपर गायें दिनभर चरती थीं, उस स्थानको गोचर या गऊचरांद कहा जाता था। गऊचरांदसे सायंकाल ग्वाले जब उस चौणे (गायोंके समूह)-को गाँवमें लेकर आते थे, तो उसे गोधूलि वेला कहा जाता था। आजकल गोधूलि वेलामें विवाहका शुभ मुहूर्त माना जाता है। गऊ माताके चरणोंसे उड़ी धूलसे सम्पूर्ण वातावरण पवित्र होता था। गाँवोंके आसपासके जंगलोंमें भी गायें चरती थीं। जंगल गायोंके लिये सुरक्षित थे। गोचर भूमिके साथ-साथ गायोंके जल पीनेके लिये जोहड़, सरोवर, तालाब और नदियोंके तट भी होते थे, जिनके किनारोंपर अनेक प्रकारके बड़, पीपल, नीम आदिके वृक्ष लगाये जाते थे। इन्हीं वृक्षोंकी छायामें दोपहरके समय विशेष रूपमें गर्मियोंमें गायें चरनेके बाद बैठकर जुगाली करती थीं।

चकबन्दीके समय भी गोचर भूमि (गऊचरांद)-को सुरक्षित रखा गया था। कालान्तरमें स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् लोगोंने मिलकर लोभवश गोचर भूमिकी बन्दरबाँट कर ली। गायोंके प्रात:काल बैठनेवाले गोस्थलपर लोगोंने अतिक्रमण कर लिया। वन-सम्पदा धीरे-धीरे नष्ट हो गयी। जलभरावके स्थान भी समाप्त हो गये। इसकी दोहरी मार पशुओं और पक्षियोंपर पड़ी। गायोंके बैठने, चरने और जलपीनेके तीनों ही स्थान लोगोंद्वारा हड़प लिये गये, तो गोपालन या गोरक्षा कैसे सम्भव हो?

भारत यूरोप और अमेरिका-जैसा नया देश नहीं है। यह तो एक प्राचीन ग्रामीणप्रधान और कृषिप्रधान देश है। भारतमें कृषि गऊके जाये बैलोंसे की जाती थी। इसलिये गोपालनके बिना खेती करना सम्भव नहीं था, जिसके कारण गोमाताका महत्त्व था। जबसे लोहेके बैल—ट्रैक्टर आये, तबसे गोवंशपर घोर संकट आ गया। एक समय था जब भारत स्वतन्त्र हुआ था, तो उस समयके सर्वेक्षणके अनुसार ८३ करोड़ पशु थे। अब केवल आठ करोड़ पशु रह गये हैं, जो गम्भीर चिन्ताका विषय है। आजके बाजारवादी दौरमें गायके प्रति केवल मौखिक सहानुभूतिका प्रदर्शनमात्र है। व्यावहारिक और क्रियात्मक रूपमें उसकी रक्षा गोचर भूमिकी पुन: स्थापना करने से होगी। गोशालाओंके सुधारको प्रोत्साहन प्रदान करें, तो गोवंशमें वृद्धि होगी तथा भारत सम्पन्न और सुखी होगा।

साधनोपयोगी पत्र

संसारमें रहनेका तरीका

आपने लिखा 'नाटकके पात्रकी-ज्यों अभिनय करनेकी बात पूरी समझमें नहीं आयी; मनमें एक भाव हो और ऊपरसे दूसरा बतलाया जाय, तो उसमें झूठ धोखेका आरोप होगा।' बात ठीक है, झूठ और धोखा नीयतमें दोष होनेसे होता है। नाटकके पात्रके द्वारा जो क्रिया होती है, वह इतनी जाहिर होती है कि किसीको उसमें झूठ और धोखेका अनुमान नहीं होता। सभी जानते हैं कि ये केवल अभिनय करनेवाले पात्र हैं, स्टेजपर जो कुछ दिखलाया जाता है, वह खेल है। खेलमें जो आपसका व्यवहार होता है, वह स्टेजपर तो सच्चा ही होता है—और है भी वह स्टेजके लिये ही। इसी प्रकार यह संसार भगवान्का नाट्य-मंच (स्टेज) है। इसपर हमलोग सभी खेलनेवाले पात्र (ऐक्टर) हैं। सभीके जिम्मे अलग-अलग पार्ट हैं। अपना-अपना पार्ट सभीको खेलना पड़ता भी है। सभी बाध्य हैं, भगवान्के कानूनके। परंतु जो खेलके सामानको, खेलसे होनेवाली आमदनीको अपनी मान लेता है, उसपर अधिकार करना चाहता है अथवा अपना पार्ट ठीक नहीं खेलता यानी अकर्तव्य कर्म करता है, वह दण्डका पात्र होता है। जो ठीक खेल खेलता है तथा खेलके सामान, खेलके पात्र और खेलकी आमदनीपर प्रभुका अधिकार समझता है, वह खेल चाहे किसी रसका हो—करुण हो या भयानक, सुन्दर हो या बीभत्स—वह सदा आनन्दमें रहता है। उसका काम है अपने पार्टको ठीक करना। धोखा या झूठ तब हो, जब वह मनसे तो पार्ट करना चाहे नहीं और केवल ऊपरसे करे। अर्थात् भगवान्के विधानके अनुसार जो जिसका पुत्र है, उसे (इस स्टेजपर-संसारमें) उसको ठीक पिता ही जानकर सच्चे मनसे पुत्रका-सा बर्ताव ही करना चाहिये। स्त्रीको पतिके साथ पत्नीका, पतिको पत्नीके साथ पतिका, माताको पुत्रके साथ माताका, पुत्रको माताके साथ पुत्रका इसी प्रकार सच्चे मनसे बर्ताव करना चाहिये। जब बर्ताव और मन एक हैं, तब धोखा और झूठ क्यों है। बर्ताव और मन दोनों ही व्यवहारमें हैं—अर्थात् स्टेजके खेलके लिये हैं और व्यवहारमें दोनों ही समान हैं। रही स्टेजके बाहरकी बात—वास्तविक स्थितिकी बात, सो वास्तविक स्थिति तो खेल है ही। खेलमें वहींतक सत्यता है, जहाँतक खेलसे सम्बन्ध है। खेलके परे तो हम न पात्र हैं, न हमारा कोई नाता है। हमारा नाता तो केवल एक प्रभुसे है, जिसका यह सारा खेल है।

या यों समझना चाहिये कि यह घर मालिकका—भगवान्का है। हम इसमें सेवक हैं। भगवान्ने नाना प्रकारके सम्बन्ध रचकर हमसे सेवा लेनेके लिये इतने सम्बन्धियोंको भेजा है। हमें उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये—भगवान्के भेजे हुए समझकर। उनकी सेवासे भगवान् प्रसन्न होते हैं, तब उनकी सेवामें अवहेलना क्यों की जाय? परंतु उनकी सेवा करनी है भगवान्की सेवाके लिये ही। हमारा सम्बन्ध तो भगवान्से ही है—भगवान्के नातेसे ही इनसे नाता है। इनकी सेवा इसीलिये हमको आनन्द देती है कि इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। यदि भगवान् कहें कि तुम्हें दूसरा काम दिया जायगा, इनकी सेवा दूसरोंको सौंपी जायगी, तो बहुत ठीक है। हमें तो भगवान्का काम करना है न? वे कुछ भी करायें। वे यहाँ रखें तो ठीक है, दूसरी जगह (और किसी योनिमें) भेज दें तो ठीक है। जिनसे सम्बन्ध है, उनके बीचमें रखें तो ठीक है और उनसे अलग रखें, तो भी ठीक है। घर उनका, घरकी सामग्री उनकी, घरके आदमी उनके और हम भी उनके। वे चाहे जैसे चाहें जिसका उपयोग करें। न भोगकी इच्छा हो न त्यागकी; न कोई अपना हो न पराया; न जीनेमें सुख हो न मरनेमें

दुःख। हर बातके लिये वैसे ही तैयार रहना चाहिये, जैसे आज्ञाकारी सेवक अपने मालिकका हुक्म बजानेके लिये तैयार रहता है।

बस, मैनेजर बन जाय—मालिक नहीं। मालिकीका दावा छोड़ दे, ममत्व हटा ले; मालिक चाहे जहाँ रखें। इस दुकानके रुपये उस दुकानमें भेजनेकी आज्ञा दें, तो खुशी है; उस दुकानके रुपये यहाँ मँगवा लें, तो खुशी है। यहाँके किसीको भी बदली करके और किसी जगह भेज दें या और किसीको बदली करके यहाँ बुला लें— दोनोंमें ही खुशी है और हमारी यहाँसे बदली कर दें तो भी खुशी है। हम भी उन्हींके, सब दुकानें उन्हींकी, सब सामान-धन उनका और आदमी उनके। इस प्रकार संसारमें रहनेसे एक तो अभिमानका नाश होता है, जो बहुत-से पापोंकी जड़ है तथा घर और घरके लोगोंमें ममता नहीं रहती, जो दुःखोंको उपजाती है। याद रखना चाहिये, दुःख ममतासे ही होता है। न मालूम कितने लोगोंके रोज पुत्र मरते होंगे, कितनोंके दीवाले निकलते होंगे; हम नहीं रोते, परंतु जिसमें 'मेरापन' है, उसको कुछ भी हो जाय तो बड़ा दुःख होता है। मालिकका मान लेनेपर ऐसी ममता नहीं रहती; क्योंकि सारी दुनिया ही मालिककी है। कोई कहीं रहे, रहेगा मालिककी दुनियामें ही। पाप आसक्तिसे होते हैं, मालिकका मान लेनेपर आसक्ति भी नहीं रहती और बिना किसी तकलीफके सावधानीके साथ संसारमें कर्तव्य-कर्म किया जाता है, इससे सेवारूप भजन भी होता है।

इस विषयको ठीक तरहसे समझना चाहिये। यह ठीक समझमें आ जानेपर फिर किसी भी हालतमें दुःख या अशान्ति नहीं हो सकती। जीवन-मृत्यु, मान-अपमान, लाभ-हानि, सुख-दुःख—सभीमें मालिककी लीला, मालिकका हाथ, मालिककी प्रसन्नता, मालिककी रुचि, मालिकका विधान और उसीमें अपना परममंगल देखकर अपार आनन्द और विशाल शान्ति रहती है। कर्तव्य-कर्म तो मालिककी सेवाके लिये किये जानेवाले अभिनयके रूपमें होता ही है। निरन्तर एक ही उद्देश्य रहता है, जीवन एक ही लक्ष्यपर लग जाता है—स्थिर हो जाता है; वह है भगवान्‌की प्रसन्नता, भगवान्‌का प्रेम, भगवान्‌की उपलब्धि। यही मनुष्य-जीवनका सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य है। भगवान्‌की उपलब्धिको छोड़कर जीवनका और कोई भी प्रयोजन नहीं होना चाहिये। हमारा प्रत्येक कार्य, प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक भावना, प्रत्येक विचारधारा निरन्तर वैसे ही भगवान्‌की ओर अबाध गतिसे चलनी चाहिये, जिस तरह गंगाकी धारा सारे विघ्नोंको हटाती हुई अनवरत समुद्रकी ओर बहती है। समस्त पदार्थ, समस्त भावना, समस्त सम्बन्ध भलीभाँति अर्पण हो जाने चाहिये—भगवच्चरणोंमें। अपना कुछ भी न रहे, सब कुछ उनका हो जाय। जो कुछ उनका हो गया, वही सुरक्षित है, वही सफल है।

मन स्थिर करनेके लिये वैराग्यकी भावना तथा भजनके अभ्यासकी जरूरत है। जबतक संसारमें राग—आसक्ति है, तबतक मनकी चंचलताका मिटना बहुत कठिन है। संसारके बदले भगवान्‌में राग उत्पन्न करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। पहले-पहल तो ध्यानके लिये बैठनेपर वे बातें याद आयेंगी, जो और समय नहीं आतीं—फालतू बातें, परंतु अभ्यास जारी रखनेपर वे सब बातें चली जायँगी। इसके लिये निरन्तर अभ्यासकी आवश्यकता है।

सबसे सरल उपाय है भगवान्‌के नामका जप करना। मन लगे या न लगे, यदि श्रीभगवान्‌के नामका जप होता रहेगा तो अन्तमें उसीसे कल्याण हो जायगा—इस बातपर विश्वास करना चाहिये। साथ ही वैराग्यकी भावना बढ़ानी चाहिये। भगवान्‌के सम्बन्धको छोड़कर जगत्‌में जो कुछ भी वस्तु है, अन्तमें दुःख देनेवाली ही है। जगत्‌की, घरकी, शरीरकी सेवा करनी चाहिये—भगवान्‌के सम्बन्धको लेकर ही। यदि भोगोंके सम्बन्धसे जगत्‌का सेवन होगा तो उससे दुःख ही उपजेगा, यह निश्चय समझना चाहिये। भगवान्‌से रहित जगत्—भोग-जगत् तो 'दुःखालय' ही है।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-शरद्-ऋतु, आश्विन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।५४ बजेतक	शनि	पू० भा० प्रातः ७।८ बजेतक	१७ सितम्बर	**प्रतिपदाश्राद्ध, कन्या-संक्रान्ति,** दिनमें ९। ३० बजे, **शरद्-ऋतु** प्रारम्भ, **विश्वकर्मा पूजा, मूल** रात्रिशेष ५।५२ बजेसे।
द्वितीया ,, ८।४४ बजेतक	रवि	रेवती रात्रिशेष ४।२४ बजेतक	१८ ,,	**द्वितीयाश्राद्ध, मेषराशि** रात्रिशेष ४। २४ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिशेष ४। २४ बजे।
तृतीया सायं ६। २५ बजेतक	सोम	अश्विनी रात्रिमें २।४७ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें ७। ३५ बजेसे सायं ६। २५ बजेतक, **तृतीयाश्राद्ध, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।५ बजे, मूल रात्रिमें २।४७ बजेतक।
चतुर्थी दिनमें ४।० बजेतक	मंगल	भरणी ,, १।६ बजेतक	२० ,,	**चतुर्थीश्राद्ध।**
पंचमी ,, १।३४ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, ११।२८ बजेतक	२१ ,,	**वृषराशि** प्रातः ६।४३ बजेसे, **चन्द्रषष्ठी, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।४४ बजे, **पंचमी-षष्ठीश्राद्ध।**
षष्ठी ,, ११।११ बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, ९।५४ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें ११। ११ बजेसे रात्रिमें १०।५ बजेतक, **सप्तमीश्राद्ध।**
सप्तमी ,, ८।५९ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा ,, ८।३२ बजेतक	२३ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें ९।१४ बजेसे, **जीवत्पुत्रिकाव्रत, अष्टमीश्राद्ध, सायन तुलाराशि**का सूर्य दिनमें ११।१ बजे।
अष्टमी प्रातः ६।५९ बजेतक नवमी रात्रिशेष ५। १८ बजेतक	शनि	आर्द्रा ,, ७। २६ बजेतक	२४ ,,	**मातृनवमी, नवमीश्राद्ध।**
दशमी रात्रिमें ३।५८ बजेतक	रवि	पुनर्वसु रात्रिमें ६।४२ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें ४। ३८ बजेसे रात्रिमें ३।५८ बजेतक, **कर्कराशि** दिनमें १२।५३ बजेसे, **दशमीश्राद्ध।**
एकादशी ,, ३।३ बजेतक	सोम	पुष्य सायं ६।१८ बजेतक	२६ ,,	**इन्दिरा एकादशीव्रत (सबका), एकादशीश्राद्ध, मूल** सायं ६। २८ बजेसे।
द्वादशी ,, २।३६ बजेतक	मंगल	आश्लेषा ,, ६। २१ बजेतक	२७ ,,	**सिंहराशि** सायं ६।२१ बजेसे, **द्वादशीश्राद्ध, हस्तनक्षत्र**का सूर्य दिनमें २।४५ बजे।
त्रयोदशी ,, २।४१ बजेतक	बुध	मघा रात्रिमें ६।५५ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।४१ बजे, **प्रदोषव्रत, त्रयोदशीश्राद्ध, मूल** रात्रि ६।५५ बजेतक।
चतुर्दशी रात्रिमें ३।१९ बजेतक	गुरु	पू० फा० रात्रिमें ८।० बजेसे	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।१ बजेतक, **कन्याराशि** रात्रिमें २।२३ बजेसे, **चतुर्दशीश्राद्ध।**
अमावस्या ,, ४।२१ बजेतक	शुक्र	उ० फा० रात्रिमें ९।३२ बजेतक	३० ,,	**अमावस्या, अमावस्या श्राद्ध, पितृविसर्जन।**

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, आश्विन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिशेष ५।५३ बजेतक	शनि	हस्त रात्रिमें ११। ३२ बजेतक	१अक्टूबर	**शारदीय नवरात्रारम्भ, अग्रसेन-जयन्ती।**
द्वितीया अहोरात्र	रवि	चित्रा ,, १।५१ बजेतक	२ ,,	**तुलाराशि** दिनमें १२। ४२ बजेतक, **महात्मा गाँधी-जयन्ती।**
द्वितीया दिनमें ७।४४ बजेतक।	सोम	स्वाती रात्रिशेष ४।२४ बजेतक	३ ,,	× × × ×
तृतीया ,, ९।४८ बजेतक	मंगल	विशाखा अहोरात्र	४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।५० बजेसे, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें १२। २३ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी ,, ११।५३ बजेतक	बुध	विशाखा दिनमें ७। ३ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें ११। ५३ बजेतक।
पंचमी ,, १।५० बजेतक	गुरु	अनुराधा ,, ९। ३४ बजेतक	६ ,,	**मूल** दिनमें ९। ३४ बजेसे।
षष्ठी ,, ३। ३१ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,, ११।४९ बजेतक	७ ,,	**धनुराशि** दिनमें ११। ४९ बजेसे।
सप्तमी सायं ४।४७ बजेतक	शनि	मूल ,, १।४२ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें ४। ४७ बजेसे रात्रिशेष ५। १२ बजेतक, **महानिशापूजन, मूल** दिनमें १। ४२ बजेतक।
अष्टमी ,, ५। ३८ बजेतक	रवि	पू० षा० ,, ३।१० बजेतक	९ ,,	**मकरराशि** रात्रिमें ९। २४ बजेसे, **श्रीदुर्गाष्टमीव्रत।**
नवमी ,, ५।५५ बजेतक	सोम	उ० षा० ,, ४।७ बजेतक	१० ,,	**महानवमी, श्रीदुर्गानवमी, चित्रा**का सूर्य रात्रिमें ३। १५ बजेसे।
दशमी ,, ५। ४० बजेतक	मंगल	श्रवण सायं ४। ३२ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ५।१८ बजेसे, **कुंभराशि** रात्रिमें ४। ३० बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ४। ३० बजेसे, **विजयदशमी।**
एकादशी ,, ४।५७बजेतक	बुध	धनिष्ठा ,, ४ । ३० बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** सायं ४। ५७ बजेतक, **पापांकुशा एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी दिनमें ३।४८ बजेतक	गुरु	शतभिषा दिनमें ४।० बजेतक	१३ ,,	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, २। १५ बजेतक	शुक्र	पू० भा० ,, ३।११ बजेतक	१४ ,,	**मीनराशि** दिनमें ९। २३ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १२। २३ बजेतक	शनि	उ० भा० ,, २।० बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।२३ बजेसे रात्रिमें ११।१९ बजेतक, **व्रतपूर्णिमा, शरत्पूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, १०। १५ बजेतक	रवि	रेवती ,, १२।३५ बजेतक	१६ ,,	**मेषराशि** दिनमें १२। ३५ बजेसे, **पूर्णिमा, महर्षि वाल्मीकिजयन्ती, पंचक समाप्त** दिन १२। ३५ बजे।

कृपानुभूति

शिवमहास्तोत्रका अद्भुत प्रभाव

आजसे करीब छः वर्ष पूर्वकी बात है, मैंने एक बड़ा-सा प्लाट क्रय करके उसमें वास्तुशास्त्रके अनुसार मकान बनवाकर रहने लगा। तभीसे मानो मेरे ऊपर विपत्तियोंका पहाड़ टूटने लगा। पहले मेरे परिवारमें दवा आदिपर नगण्य खर्च होता था, सभी लोग पूर्ण स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त रहते थे, परंतु नये मकानमें आते ही मेरे पुत्रके फेफड़ेमें टी०बी० हो गयी, जो काफी प्रयासके बाद निदानमें आयी और दो वर्षकी अनवरत चिकित्सासे मेरा पुत्र ठीक हुआ और तभी एक मार्ग-दुर्घटनामें मेरे बाँयें पैरकी वृहत्तर हड्डी (फीमर) और कूल्हा भयंकर तरीकेसे टूट गये। एक अस्पतालमें दो दिनके उपचारके बाद दूसरे अस्पतालमें ऑपरेशन करवाया तथापि घुटने आदिमें पीड़ा बनी रही, कई माह बाद घुटनेसे कील निकलवाने गया तो वह कील ही ऑपरेशनके दौरान हड्डीमें चली गयी, जो कई घण्टेके प्रयासके बाद ही निकल पायी और तभी ऑपरेशनके चौदह माह बाद वही पैर मय सपोर्टिंग राडके साथ टूट गया। अतः तीसरी बार ऑपरेशन लखनऊसे करवाना पड़ा, तब जाकर पैरमें क्रमिक सुधार हुआ। इससे पहले मेरे परिवारपर दवा आदिका खर्च नगण्य हुआ करता था, परंतु अब घरके पाँचों सदस्य प्रायः बीमार रहने लगे। घरमें कलह—अन्तर्कलह तीव्रतम गतिसे बढ़ने लगा, बिना कारण एक-दूसरेकी बात सुने लोग आपसमें झगड़ने लगे। इसी बीच बड़ी लड़कीके कानमें भी असामान्यताएँ परिलक्षित होने लगीं, जो बस्तीसे लखनऊतकके उपचारसे भी ठीक नहीं हुईं। पत्नीको किडनीमें पथरी आदि कई बीमारियोंका सामना करना पड़ा। अभी मैं इन समस्याओंसे जूझ ही रहा था कि मेरी छोटी लड़की जो काफी कुशाग्र बुद्धि की थी और नौवीं कक्षामें पढ़ रही थी, मानसिकरूपसे अवसादग्रस्त हो गयी। इसी अवस्थामें उसने एक बार विषपानतक कर लिया, किसी तरह वहाँसे ठीक हुई, लेकिन मानसिक अवसाद बढ़ता ही गया। औषधियोंसे लाभ न होनेपर ज्योतिर्विदों तथा पुजारी तान्त्रिकोंसे भी केवल इस उद्देश्यसे मिला कि घरकी अशान्तिका सही कारण पता चल सके। सबसे पहले एक देवीस्थानपर गया तो वहाँके पुजारीने कहा कि यहाँ आनेके बाद कोई पूजा-पाठ न करें, केवल उलटी-सीधी इस स्थानकी परिक्रमा करें, शास्त्रीय मर्यादाके विरुद्ध लगनेसे फिर वहाँ नहीं गया। पुनः कुछ मित्रोंके परामर्शसे पुत्रीके साथ एक दरगाह गया, वहाँ समस्याका सही निदान तो हुआ, परंतु मेरे मनने इस बातको स्वीकार नहीं किया कि कोई स्वजन भी ऐसा कर सकता है। फिर विधर्मियोंका स्थान होनेसे असुविधा भी हुई, परिणामतः दोबारा वहाँ नहीं गया। कतिपय अन्य सोखा या तान्त्रिकोंसे सम्पर्क करनेपर सबने घरपर अभिचारादि एवं उसके अनुप्रयोगकी बात बतायी। इस बीच छोटी लड़कीने स्कूल जाना भी छोड़ दिया, तब उसको लेकर मेंहदीपुर बालाजी भी गया, वहाँकी औपचारिक पूजाके बाद ऊपर कालीस्थान एवं भैरोजीतक गया, जहाँ बीमारीका पता लगाते समय कीर्तनके बीच वह लड़की पहाड़ीपरसे कूद गयी, परंतु बालाजीकी कृपासे उसे चोट नहीं लगी। लौटकर घर आया तो मेरे सारे शरीरमें भयंकर पीड़ा होने लगी तो मुझे ऐसा लगा कि सकाम हनुमत्-आराधनाके दौरान मुझसे कहीं संयम टूट गया, जिससे मुझे शारीरिक कष्ट मिला। कमरमें भयंकर दर्दका ज्वार उठने लगा, थोड़ी-सी चोटके बाद एक उँगलीका नाखून गिर गया। घरमें अर्थाभाव एवं अशान्ति भी बढ़ती गयी। लेकिन इसका एक सकारात्मक पहलू भी रहा, इन विपरीत परिस्थितियोंमें मेरा अनवरत शास्त्रीय अध्ययन तीव्रतम रूपसे बढ़ता गया और बढ़ता गया भगवन्नामपर विश्वास। विभिन्न अध्ययनोंके बीच

राजकीय कार्योंको करते हुए मैं कल्याणका हनुमान अंक/लिंगपुराणादिका सम्यक् अध्ययन करके इस निर्णयपर पहुँचा कि भगवन्नामसे ही मेरा हर तरहसे कल्याण होगा, जब युगों-युगोंसे भगवान् शिव तथा हनुमान्जी इस नामाराधनमें लगे हैं, तो हम लोगोंके कल्याणमें कोई संशय नहीं। भाईजीके विभिन्न लेखों एवं जीवनीसे प्रभावित होकर नामाराधक बचपनसे था, परंतु परिस्थितियाँ बिगड़नेसे अब एकनिष्ठ हो गया। सब जगहसे हारकर मैंने त्रयतापनाशक सम्पुट लगाकर ***'दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥'*** श्रीरामचरितमानसका चार-पाँच मासिक/नवाह्न पाठ किया तो काफी राहत मिली, अबतक यह बात स्पष्ट हो गयी कि मेरी आशंकानुरूप मेरे मकान/परिवारपर भयंकर अभिचार एवं उसका कई अनुप्रयोग मेरे पितृतुल्य निजी स्वजन दम्पतीने द्वेषवश किया था, मैं उसको उलटवाना चाहता नहीं था, फिर भी घरमें शान्ति तो चाहता ही था और एक दिन अत्यन्त दुखी होकर मैं शिवपुराण उलट रहा था, तभी शिवपुराणकी वायवीयसंहिता*में पंच आवरणोंसे आवृत भगवान् शिवके शिवमहास्तोत्र नामक पूजा-स्तोत्रकी विधिपर मेरी दृष्टि पड़ी। पंच आवरणोंसे आवृत विधानयुक्त पूजा तो कठिन होनेसे मैं कर नहीं सकता था, मैंने प्रायोगिक रूपसे केवल पाठ किया। फिर क्या था! उसी दिनसे चमत्कार हो गया! मैं जिस उद्देश्यसे पाठ करता, सफलता मिलती गयी। १८९ श्लोकोंके इस दिव्य स्तोत्रमें भगवान् शिवकी शिवासहित स्तुति करते हुए समस्त देवताओं (यथा श्रीगणेश, कार्तिकेयजी, नन्दी, वीरभद्र, अनन्त, भगवान् ब्रह्मा, शिवके आत्मस्वरूप भगवान् विष्णु, सप्तमातृकाओं, समस्त देवियों, सप्तर्षिगण, नारदप्रभृति ऋषिगण, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, भूत-प्रेत, बेताल, डाकिनी-शाकिनी आदि)-की दिव्य स्तुति करते हुए इनसे शिवके अनुशासनमें रहते हुए कल्याणकी कामना की गयी है और अन्तमें पंचाक्षरीविद्या **'ॐ नमः शिवाय'** तथा शक्तिविद्या **'ॐ नमः शिवायै'** की न्यूनतम एक-एक मालाका जप करते हुए उसे शिव-शिवाको संयुक्तरूपसे समर्पित करते हुए क्षमायाचनाका विधान है। इसका प्रथम प्रयोग उपमन्यु ऋषिके परामर्शसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने करके अपनी अभिलषित मनोकामना पूर्ण की है। सविधि पूजाकी महिमा तो अनन्त है, केवल पाठमात्रसे शिव-शिवा आपके सामने अन्तरिक्षमें खड़े हो जाते हैं, ऐसा स्तोत्रमें उल्लेख है। उद्देश्यविशेषके लिये इसकी एक माहकी आवृत्तिका विशेष महत्त्व है। यद्यपि मैं निष्काम पूजाको महत्त्व देता था तथापि उपरिलिखित कष्टोंके निवारणार्थ मैंने ३०-३० पाठका अनुष्ठान बिना पूजाके ही किया। क्रमशः घरमें शान्ति आयी; छोटी पुत्रीकी मानसिक स्थितिमें सुधार हुआ। कम अध्ययनके बावजूद उसने बिना किसी सहायताके प्रथम श्रेणीमें परीक्षा उत्तीर्ण की और दोनों बच्चोंमें भी सुधार हुआ। मात्र तीन अनुष्ठान होते-होते मेरी दशा बदल गयी। इस स्तोत्रके अन्तमें नास्तिक एवं दुर्जनोंसे बचाव तथा आस्तिकजनों एवं विद्वानोंकी कृपा प्राप्त करनेका मन्त्र है। लगातार तीस वर्षोंसे मुझे एक सद्गुरुकी खोज थी, सम्पर्कमें कुछ-एक आये भी परंतु उनसे औपचारिक दीक्षा नहीं ले सका था। इस स्तोत्रका एक विचित्र प्रभाव यह हुआ कि अतिशीघ्र मुझे अति विद्वान् स्वयं रससिद्ध जगद्गुरुका सहज शिष्यत्व एवं स्नेह प्राप्त हुआ। इस प्रकार मेरा तो यह विश्वास है कि इस स्तोत्रका श्रद्धा-विश्वासपूर्वक पाठ करनेसे भगवान् शंकरकी कृपासे सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।—**दिनेशचन्द्र उपाध्याय**

---

* यह स्तोत्र गीताप्रेससे प्रकाशित संक्षिप्त शिवपुराणकी वायवीयसंहिताके उत्तरार्धके ३१वें अध्यायमें भी प्रकाशित है। उपमन्युमुनिद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको उपदिष्ट इस महास्तोत्रका प्रारम्भ इस प्रकार है—

जय जय जगदेकनाथ शम्भो प्रकृतिमनोहर नित्यचित्स्वभाव। अतिगतकलुषप्रपञ्चवाचामपि मनसां पदवीमतीततत्त्वम्॥

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गंगा कसम

यह घटना सत्य है, जिसे मेरे चाचाके पिताजीने बताया था। मेरे गाँवकी यह घटना तीन परिवारोंसे सम्बन्धित है। भगवानदीन, गजोधर एवं भिखारी नामके तीन किसान अलग-अलग परिवारोंसे थे। इनमें भगवानदीन बहुत सीधे स्वभावका था। गजोधर थोड़ा चालाक तथा भिखारी सबसे चालाक किस्मका व्यक्ति था। तीनोंमें गहरी दोस्ती थी, कहीं जाते तो तीनों साथ ही जाते थे। उस समय जमींदारी व्यवस्था थी। एक परिवारकी तीन बीघा जमीन बे-दखल हो गयी थी। जमीन जमींदार-स्टेटके राजाके यहाँसे प्राप्त करना था। तीनों किसानोंने सलाह-मशविरा करके जमीन खरीदनेका निर्णय लिया। तीनों दोस्त किसान स्टेट-जमींदारके यहाँपर गये। सौदा तय हो गया। तयशुदा धनराशि स्टेटके जिलेदारको दे दी गयी। जब लिखायीका समय आया तो चालाक भिखारीने कहा कि मैं अपने नाम लिखा-पढ़ी करवा लेता हूँ, आप लोग बार-बार जिलेदार, पटवारी (लेखपाल)-के पास कहाँतक दौड़ेंगे। इस प्रकार जमीनकी पूरी लिखा-पढ़ी भिखारीके नाम हो गयी तथा तीनोंने अपना-अपना बराबरका हिस्सा लेकर अपने-अपने खेतमें फसल लेना शुरू कर दिया।

लगभग चार वर्षोंतक तीनों अपने-अपने खेतोंपर काबिज रहकर फसल उत्पन्न करते रहे। एक दिन भिखारीके मनमें लोभ आ गया। उसकी नीयत बेईमानीकी हो गयी। उसने गजोधरसे मिलकर भगवानदीनके हिस्सेका खेत अपने खेतोंमें मिला लिया तथा कहना शुरू किया कि भगवानदीनका हिस्सा नहीं है। जब यह खबर भगवानदीनको हुई तो वे दूसरे दिन हल-बैल लेकर जोतने गये, परंतु भिखारी जो पहलेसे वहाँपर मौजूद था, कहा कि कहाँ चले? तुम्हारा अब कोई भी हिस्सा इस खेतमें नहीं है। भगवानदीनने कहा कि भिखारी भाई! क्या कहते हो, मैंने खेत खरीदनेमें बराबर रुपये दिये हैं तथा चार वर्षोंसे खेतमें बराबर फसल ले रहा हूँ, मजाक क्यों करते हो? परंतु भिखारीने कहा कि तुम्हारा कोई भी हिस्सा नहीं है। खैर चाहते हो तो तुरंत बैल-हल लेकर चले जाओ अन्यथा मुझे तुम्हें यहाँसे भगाना भी आता है। भगवानदीन बिल्कुल सीधा-साधा किसान था, उसने वहाँसे चले जाना ही उचित समझा तथा कहा कि हम पंचायत करेंगे। उस समय पंचायतका निर्णय लोग मानते थे। घर आकर भगवानदीनने पास-पड़ोसमें भिखारीद्वारा की जा रही बेईमानीको बताया तो सभीने पंचायतसे निर्णय करानेकी सलाह दी। भगवानदीन करते तो क्या करते? वह झगड़ा नहीं कर सकते थे तथा कोई कानूनी कार्यवाही भी नहीं कर सकते थे; क्योंकि जमीन भिखारीके नाम थी। केवल आपसी बँटवारा था। दुखी मनसे पंचायत करानेका निर्णय लिया तथा पंचोंके पास गये। प्रधान-मुखिया तथा पंचोंने दूसरे दिनका समय दिया। दूसरे दिन खेतोंके पास ही पंचायत शुरू हुई—पंचायतमें पूछा गया—भिखारी! तुम भगवानदीनका हिस्सा क्यों नहीं दे रहे हो तथा खेतमें फसल लेनेसे मना क्यों कर रहे हो, जबकि ये चार वर्षोंसे बराबर फसल ले रहे हैं? भिखारीने कहा कि सभी खेत मेरे नाम हैं, इसमें भगवानदीनका कोई हिस्सा नहीं है तथा इनको कोई भी फसल भी नहीं बोने देंगे। पंचायतने कहा कि सभी जानते हैं कि तीनों लोगोंने बराबर रुपयेसे मिलकर खेत खरीदा था तथा सभीका हिस्सा था। इसपर भिखारीने कहा—मेरी मर्जीसे भगवानदीन खेत बोते थे, परंतु अब इनको कोई भी हिस्सा नहीं दूँगा। सभी पंच जब आपसमें सलाह-मशविरा कर रहे थे कि क्या निर्णय लिया जाय। भगवानदीनने खड़े होकर कहा—पंचो! एक प्रार्थना है कि यदि भिखारी गंगाकी दिशामें हाथ उठाकर गंगा कसम कह दें तो मैं अपना हिस्सा छोड़ दूँगा। भिखारी तुरंत कसम खानेके लिये तैयार हो गया। गंगाजल लोटामें लाया गया तथा उसे भिखारीको दिया गया और पंचायतके पंचोंने कहा कि दक्षिण दिशाकी तरफ मुँह करके गंगाजल एक हाथमें लेकर तथा एक हाथसे अपने लड़केका हाथ पकड़कर कह दीजिये कि

भगवानदीनका कोई हिस्सा नहीं है। भिखारीने एक हाथमें गंगाजल लिया तथा दूसरे हाथसे अपने लड़केका हाथ पकड़कर कहा—गंगा कसम, इन खेतोंमें भगवानदीनका कोई भी हिस्सा नहीं है।

सभीने पूर्वमें मना किया, भिखारीसे कसम न खानेकी बात कही, परंतु भिखारी नहीं माना। पंचायत समाप्त हो गयी। सभीने कहा कि गंगा मइया देखो क्या करती हैं?

लगभग छः महीनेका समय बीता। भिखारीने जिस एकमात्र लड़केका हाथ पकड़कर गंगा कसम खायी थी, रातमें सोते हुए जग गया और जोर-जोरसे चिल्लाने लगा—दादा! मैं गंगामें डूबा जा रहा हूँ। गंगामें डूबा जा रहा हूँ। भिखारीने लड़केका इलाज एवं अन्य झाड़-फूँक कराया, परंतु कोई फायदा नहीं हुआ। लड़का लगातार चिल्लाता रहता था। इसी तरह लड़का चिल्लाते-चिल्लाते एक माहमें मर गया। सभीकी आवाजमें एक ही वाक्य था। गंगा मइयाकी झूठी कसम खानेका यह फल मिला है।

लड़केके मर जानेके बाद भिखारी बिलकुल पागल-जैसा हो गया तथा वह भी चिल्लाने लगा—हाय! मेरा बच्चा, हाय! मेरा बच्चा। इस तरह भिखारी भी रात-दिन 'हाय! मेरा बच्चा' चिल्लाता हुआ छः महीनेमें मृत्युको प्राप्त हो गया। इस प्रकार एक परिवारका दुःखद अन्त हो गया; क्योंकि भिखारीके परिवारमें स्वयं एवं एक लड़का ही था। पत्नी पहले ही मर गयी थी। आज भी बुर्जुग लोग यह प्रकरण यादकर गंगा मइयाके न्यायपर अपना विश्वास व्यक्त करते हैं।

—रामप्रसाद द्विवेदी

(२)

भावके वश भगवान्

आत्मकल्याणका एक ही साधन है, अपनेको भगवान्‌का मान लेना। भगवान्‌से कोई भी रिश्ता श्रेयस्कर होता है, लेकिन यह आवश्यक है कि हम पूर्ण समर्पणपूर्वक उनसे रिश्ता स्वीकार कर लें। वह रिश्ता शत्रुका भी हो सकता है, मित्रका भी हो सकता है या पारिवारिक सम्बन्धी—जैसे पिता, पुत्र, भाई या अन्य कुछ। भगवान् उस रिश्तेमें केवल भाव ही देखते हैं।

मैं एक अल्पशिक्षित गृहस्थ नारी हूँ, मेरे दो बेटियाँ ही थीं। मुझे लालसा थी कि मेरा एक पुत्र भी होता तो कितना अच्छा होता, परंतु 'हरि इच्छा गरीयसी' मानकर सन्तुष्ट थी। एक दिन मनमें विचार आया कि जैसे मीराने भगवान् श्रीकृष्णको अपना पति मान लिया था, वैसे ही मैं भी क्यों न बाल गोपाल श्रीकृष्णको अपना पुत्र मान लूँ। फिर क्या था, बाल गोपाल मेरे पुत्र और मैं उनकी माँ!

गोपालको चूँकि गौओंसे प्रेम था, इसलिये मैं भी गोसेवा करती। गौमाताका प्रतिदिन दर्शन-नमनकर उनकी परिक्रमा करती। श्रीकृष्णकी गायी गयी गीताके अठारहवें अध्यायका नित्य श्रवण करती। तत्पश्चात् अपने दैनिक कार्योंमें लगती।

बात सितम्बर २०१२ ई० की है। यूरिक एसिड बढ़नेसे मेरे दोनों हाथोंकी अँगुलियोंमें सूजन आ गयी और अँगुलियाँ मुड़ गयीं। १०० ग्राम वजन (एक कप चाय) उठानेकी भी ताकत न थी। मैंने श्रीकृष्णको पुकारा एवं राधाकृष्णकी मूर्तिके सामने खूब रोयी। उसी समय चमत्कार हुआ। मेरी अँगुलियाँ बिलकुल सही हो गयीं। मैंने खूनकी जाँच करवायी थी, रिपोर्ट दूसरे दिन आयी, पर उससे पहले ही अँगुलियाँ ठीक हो गयीं। न दवाका सेवन किया और न कोई खटाई एवं प्रोटीनका परहेज रखती हूँ। चार सालसे बिल्कुल ठीक हूँ। यूरिक एसिडसे गठियाकी आशंका होती है। मुझे मेरे बेटेने भयानक बीमारीसे बचा लिया। गौ-गीताकी कृपासे मुझे जगत्-पिताको पुत्र बनानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह घटना याद करके आज भी मेरा दिल दहल जाता है। इस घटनासे मेरे मनके भाव बढ़े, श्रीकृष्णकी प्रेरणासे सैकड़ों भजनोंमें अपने भाव प्रकट किये तथा बिना योग्यता एवं सामर्थ्यके व्याकरणानुसार श्रीकृष्ण मुरारी-चालीसा, गौ-चालीसा, गीता-चालीसा, गंगा-चालीसा लिखे। बालगोविन्दकी कृपाने जो सम्भव नहीं था, उसे भी सम्भव कर दिया।**—श्रीमती सन्तोष पारिख**

(३)

गंगाजलसे असाध्य रोग ठीक हुआ

गंगाजल न केवल हमारी धार्मिक आस्थाकी वस्तु है, अपितु यह एक दिव्य औषधि भी है। इसके सेवनसे अनेक असाध्य रोग भी ठीक हो जाते हैं, इसके

चिकित्सकीय उपयोगसे सम्बन्धित एक घटना इस प्रकार है—मेरे बहनोई श्रीरामगोपालजी प्रधानाध्यापकको किसी जहरीले जीव या साँपकी फुँकारसे पूरे शरीरमें फफोले बन गये। उनसे जो पानी निकलता था, उसकी सड़ाँधसे कोई उनतक १०-१५ मिनट भी नहीं ठहर पाता था।

सौभाग्यसे एक दिन एक संत पधारे। उनसे मेरी बहनने अपनी व्यथा सुनायी कि मेरे पति ६-७ माहसे बिस्तरपर पड़े हैं, नौकरी भी छूटनेवाली है तो उन कृपालु संतने मेरी बहनसे पतिको गंगाजल पिलानेको कहा।

अब इतना जल कहाँ मिलेगा—यह सोचकर मेरी बहन उन्हें ऋषिकेश ले गयी, वहाँ १०-१५ दिनमें उनके मुँहसे उल्टी और दस्तद्वारा सभी जहर निकल गया फिर स्वस्थ होकर वे भीमवाड़ाके नेमाली गाँवके विद्यालयमें १०-१५ वर्षतक प्रधानाध्यापक पदपर कार्यरत रहे और २००५ ई० में मृत्यु होनेतक स्वस्थ रहे। ऐसी मेरी गंगा माँकी और उनके दिव्य जलकी महिमा है।

—झँवरलाल छीपा

(४)

सेनाके जवानोंकी मानवता

घटना जनवरी १९८८ ई० की है। मैं अपने माता-पितासे मिलकर अपनी ड्यूटीपर वापस खड़गपुर (बंगाल) लौट रहा था। नई दिल्ली प्लेटफार्मपर नीलाचल एक्सप्रेसमें अपने रिजर्वेशन कम्पार्टमेन्टमें अपनी निर्धारित सीटपर बैठकर ट्रेन चलनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। मेरे सामनेकी बर्थपर एक दम्पती आकर बैठे। युवतीकी गोदमें एक सुन्दर बालक था। सामान रखकर कुली चला गया। पति-पत्नी दोनों चाय पीने कम्पार्टमेन्टसे नीचे उतरे। सामने रेलवेका टी-स्टॉल था, जिसपर भीड़ थी। सेनाके जवानोंको पहलेहीसे चाय दी जा रही थी, अत: पब्लिकको चाय देरमें मिली।

सेनाके जवान अपने ग्रुपमें अपने हथियार रखे कुछ खड़े थे, कुछ बैठे थे। वे अपने गन्तव्य ट्रेनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ये दम्पती चाय पी रहे थे, ट्रेन धीरे-धीरे खिसकने लगी। दोनों चाय छोड़कर ट्रेन पकड़नेके लिये दौड़े। युवक पहले चढ़ा, उसने पत्नीको चढ़ानेका प्रयास किया, लेकिन इसी समय एक उचक्के (गहनाचोर)-ने युवतीके कानकी बाली (कुण्डल)-में अँगुली डालकर अपनी तरफ खींचा। युवतीका बैलेन्स डगमगाया, गोदीका बच्चा छिटका और प्लेटफार्मपर गिर पड़ा।

फौजी जवानोंने बच्चेको गिरते देख लिया। एक जवान बोगीमें चढ़ा और फुर्तीसे चेन-पुल करने लगा। दूसरा जवान इंजन-ड्राइवरके पास दौड़ गया और तीसरा गार्डके पास पहुँच गया। गाड़ी रुक गयी।

चेन-पुल करनेवाला जवान ट्रेनके रुकते ही नीचे उतरा और बच्चेको उठा लाया। बच्चा बेहोश था लेकिन उसकी नब्ज (पल्स) चल रही थी। बच्चेके सिरमें कीचड़ लगी थी, जिसे मैंने कपड़ेसे पोंछा और सिरकी मालिश की। आर्मीके बड़े अफसरने जवानसे कहकर अपनी ब्रांडीकी बोतल मँगायी। औषधिके रूपमें एक ढक्कन बच्चेके मुँहमें डाली। बच्चेकी गरदनमें हलचल हुई, रेलवे पुलिसके साथ रेलवेके डॉक्टरने आकर इन्जेक्शन लगाया। ड्राइवर, गार्ड, टी०टी० और पब्लिककी भीड़ लग गयी। जवानोंने भीड़को हटाया।

दो घण्टे बाद बच्चेको होश आया। बच्चा रोया और सभीने जवानोंको धन्यवाद दिया। जवानोंने ट्रेनको रोके रखा। स्टेशन सुपरिन्टेन्डेन्टने आर्मीके बड़े अफसरसे गुहार की, तब जवानोंने रोते हुए बच्चेको माँकी गोदीमें डालते हुए आवेशमें कहा 'आगेसे कभी भी गहने पहनकर ट्रेनमें नहीं चलना है।'

दम्पती अपनी बर्थपर आकर बैठे तो युवतीने अपने कानको टटोला। कानका एक कुण्डल गायब था, कानका खून जम चुका था, लेकिन दर्द तो हो रहा था। युवती फफककर रो पड़ी, पतिने पुचकारा और कहा—कल बाली खरीद दूँगा। भगवान्ने हमारा बच्चा बचा लिया—यह क्या कम है!

हम सभी फौजी जवानोंकी प्रशंसा कर रहे थे। बच्चा सिरके बल कीचड़में गिरा था, इसीलिये उसे होशमें लाया जा सका।

मेरे गलेमें एक आवाज गूँजी ***'जाको राखे साइयाँ मारि सके न कोय।'*** **—सुधाकर शर्मा**

मनन करने योग्य

सत्यनिष्ठाका प्रभाव

चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, सुपुष्ट, सुन्दर सींगोंवाली नन्दा नामकी गाय एक बार हरी घास चरती हुई वनमें अपने समूहकी दूसरी गायोंसे पृथक् हो गयी। दोपहर होनेपर उसे प्यास लगी और जल पीनेके लिये वह सरोवरकी ओर चल पड़ी; किंतु सरोवर जब समीप ही था, मार्ग रोककर खड़ा एक भयंकर सिंह उसे मिला। सिंहको देखते ही नन्दाके पैर रुक गये। वह थर-थर काँपने लगी। उसके नेत्रोंसे आँसू बह चले।

भूखे सिंहने उस गायके सामने खड़े होकर कहा—'अरे! तू रोती क्यों है? क्या तू समझती है कि सदा जीवित रहेगी? तू रो या हँस, अब जीवित नहीं रह सकती। मैं तुझे मारकर अपनी भूख मिटाऊँगा।'

गाय काँपते स्वरमें बोली—'वनराज! मैं अपनी मृत्युके भयसे नहीं रोती हूँ। जो जन्म लेता है, उसे मरना पड़ता ही है, परंतु मैं आपको प्रणाम करती हूँ। जैसे आपने मुझसे बातचीत करनेकी कृपा की, वैसे ही मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कर लें।'

सिंहने कहा—'अपनी बात तू शीघ्र कह डाल। मुझे बहुत भूख लगी है।'

गौ—'मुझे पहली बार ही एक बछड़ा हुआ है। मेरा वह बछड़ा अभी घास मुखमें भी लेना नहीं जानता। अपने उस एकमात्र बछड़ेके स्नेहसे ही मैं व्याकुल हो रही हूँ। आप मुझे थोड़ा-सा समय देनेकी कृपा करें, जिससे मैं जाकर अपने बछड़ेको अन्तिम बार दूध पिला दूँ, उसका सिर चाट लूँ और उसे अपनी सखियों तथा माताको सौंप दूँ। यह करके मैं आपके पास आ जाऊँगी।'

सिंह—'तू तो बहुत चतुर जान पड़ती है, परंतु यह समझ ले कि मुझे तू ठग नहीं सकती। अपने पंजेमें पड़े आहारको मैं छोड़नेवाला नहीं हूँ।'

गौ—'आप मुझपर विश्वास करें। मैं सत्यकी शपथ करके कहती हूँ कि बछड़ेको दूध पिलाकर मैं आपके पास शीघ्र आ जाऊँगी।'

सिंहने गौकी बहुत-सी शपथें सुनीं, उसके मनमें आया कि 'मैं एक दिन भोजन न करूँ तो भी मुझे विशेष कष्ट नहीं होगा। आज इस गायकी बात मानकर ही देख लूँ।' उसने गायको अनुमति दे दी—'अच्छा, तू जा; किंतु किसीके बहकावेमें आकर रुक मत जाना।'

नन्दा गौ सिंहकी अनुमति पाकर वहाँसे अपने आवासपर लौटी। बछड़ेके पास आकर उसकी आँखोंसे आँसूकी धारा चल पड़ी। वह शीघ्रतासे बछड़ेको चाटने लगी। बछड़ेने माताके रोनेका कारण पूछा। जब नन्दाने बताया कि वह सिंहको लौटनेका वचन दे आयी है, तब बछड़ेने कहा—'माता! मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगा।'

नन्दाकी बात सुनकर दूसरी गायोंने उसे सिंहके पास फिर जानेसे रोकना चाहा। उन्होंने अनेक युक्तियोंसे नन्दाको समझाया, परंतु नन्दा अपने निश्चयपर दृढ़ रही। उसने सत्यकी रक्षाको ही अपना धर्म माना। बछड़ेको उसने पुचकारकर दूसरी गायोंको सौंप दिया; किंतु जब वह सिंहके पास पहुँची, तब पूँछ उठाये 'बाँ-बाँ' करता उसका बछड़ा भी दौड़ा आया और अपनी माता तथा सिंहके बीचमें खड़ा हो गया। नन्दाने यह देखकर सिंहसे कहा—'मृगेन्द्र! मैं लौट आयी हूँ। आप मेरे इस अबोध बछड़ेपर दया करें। मुझे खाकर अब आप अपनी क्षुधा शान्त कर लें।'

सिंह गायकी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर बोला—'कल्याणी! जो सत्यपर स्थिर है, उसका अमंगल कभी नहीं हो सकता। अपने बछड़ेके साथ तुम जहाँ जाना चाहो, प्रसन्नतापूर्वक चली जाओ।'

उसी समय वहाँ जीवोंके कर्म-नियन्ता धर्मराज प्रकट हुए। उन्होंने कहा—'नन्दा! अपने सत्यके कारण बछड़ेके साथ तुम अब स्वर्गकी अधिकारिणी हो गयी हो और तुम्हारे संसर्गसे सिंह भी पापमुक्त हो गया है।'

[पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड]

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—श्रीदुर्गासप्तशतीके विभिन्न संस्करण

(शारदीय नवरात्र १ अक्टूबर शनिवारसे प्रारम्भ होगा)

कोड 1346, सानुवाद, मोटा टाइप

कोड 1281, सानुवाद, विशिष्ट संस्करण

कोड 1161, केवल हिन्दी

कोड 1567, मूल, मोटा

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1567	**मूल,** मोटा टाइप (बेड़िआ)	४५
876	**मूल,** गुटका	१५
1346	**सानुवाद,** मोटा टाइप	३५
1281	**सानुवाद** (वि० सं०)	५०
118	**सानुवाद,** सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ, तेलुगु भी)	३०
489	सानुवाद, सजिल्द, गुजराती भी	४५
866	**केवल हिन्दी**	२०
1161	,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द	५०

दुर्गाचालीसा एवं विन्ध्येश्वरी-चालीसा (अनेक आकार-प्रकारमें)

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—शक्ति-उपासकोंके लिये कुछ विशिष्ट प्रकाशन

'श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण'—[सचित्र, मूल श्लोक, हिन्दी-व्याख्यासहित] (कोड 1897-1898) दो खण्डोंमें—इस महापुराणको (मूल श्लोक भाषा-टीकासहित)-दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया है। इसके प्रथम खण्डमें १ से ६ स्कन्ध एवं द्वितीय खण्डमें ७ से १२ स्कन्धकी कथाएँ दी गयी हैं। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹ ४००, **केवल हिन्दी (कोड 1793-1842)**—मूल्य ₹ २००, **संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत (मोटा टाइप) कोड 1133, ग्रन्थाकार**—मूल्य ₹ २४०, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु भी उपलब्ध।

महाभागवत [देवीपुराण] (कोड 1610) हिन्दी-अनुवादसहित—इस पुराणमें मुख्यरूपसे भगवतीके माहात्म्य एवं लीला-चरित्रका वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें मूल प्रकृतिके गंगा, पार्वती, सावित्री, लक्ष्मी, सरस्वती और तुलसीरूपमें की गयी विचित्र लीलाओंके रोचक आख्यान हैं। मूल्य ₹ १२०

देवीस्तोत्ररत्नाकर (कोड 1774) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें भगवती महाशक्तिके उपासकोंके लिये देवीके अनेक स्वरूपोंके उपासनार्थ चुने हुए विभिन्न स्तोत्रोंका अनुपम संकलन किया गया है। मूल्य ₹ ३५

शक्तिपीठदर्शन (कोड 2003)—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवतीके ५१ शक्तिपीठोंके इतिहास और रहस्यका विस्तृत वर्णन है। मूल्य ₹२०

नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस' के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1389	**श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (वि०सं०)	६००
80	,, बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	५००
1095	,, ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) गुजरातीमें भी	३००
81	,, ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]	२४०
1402	,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य संस्करण)	१९०
1563	,, मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)	१४०
1436	,, मूलपाठ, बृहदाकार	२५०
82	**श्रीरामचरितमानस**—मझला साइज, सटीक, [बँगला, गुजराती, अंग्रेजी भी]	१२०
1617	,, मझला, रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित	१३०
83	,, मूलपाठ, ग्रन्थाकार [गुजराती, ओड़िआ भी]	१२०
84	,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	७०
85	,, मूल, गुटका [गुजरातीमें भी]	४५
1544	,, मूल गुटका (विशिष्ट संस्करण)	५०
1349	,, सुन्दरकाण्ड सटीक, मोटा टाइप, दो रंगमें	२५

प्र० ति० २०-८-२०१६
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2014–2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014–2016

कल्याण-'गंगा-अङ्क' अभी भी उपलब्ध

'कल्याण' के वर्तमान वर्षके विशेषाङ्क **'गंगा-अङ्क'** के ग्राहक अभी बनाये जा रहे हैं। ग्राहक बननेके इच्छुक महानुभाव निर्धारित रकम शीघ्र भिजवा देवें। वी. पी. पी. से भी मँगानेकी सुविधा है। आर्डर भेजते समय पूरा पता, पिन कोडसहित एवं मोबाइल नं० भी अवश्य भेजना चाहिये।

वार्षिक-शुल्क— ₹ २००, ₹ २२० (सजिल्द)। पञ्चवर्षीय-शुल्क— ₹ १०००, ₹ ११०० (सजिल्द)

उपर्युक्त विशेषाङ्क पुस्तक-विक्रेताओंके माध्यमसे भी उपलब्ध कराया गया है। आप अपने पासके पुस्तक-विक्रेताओंसे भी ₹२२० वार्षिक शुल्क देकर कूपनयुक्त सजिल्द अंक प्राप्त कर सकते हैं।

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

हेल्प लाइन नम्बर-09235400242 एवं 09235400244 व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

आंध्रमहाभागवतम्, तेलुगु (कोड 2038-2039)—बोम्मर पोतनामात्यद्वारा विरचित आंध्रमहाभागवतम् तेलुगुमें अनुवादके साथ प्रकाशित किया गया है। आंध्र प्रदेशमें इसकी बहुत माँग थी। कई वर्षोंके लगातार प्रयास करनेपर यह ग्रन्थ तैयार हो पाया है। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹५००

रामायणके कुछ आदर्श पात्र (कोड 2055) नेपाली—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीराम, श्रीलक्ष्मण, श्रीभरत, श्रीशत्रुघ्न, भक्त हनुमान् तथा भगवती श्रीसीताजीके पावन चरित्रका सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹१५

सं० शिवपुराण, तमिल (कोड 2043)—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। मूल्य ₹३००

इसी माहमें उपलब्ध

महाभारत-सटीक (**कोड 728**) मूल्य ₹१९५०; (**कोड 32**) खण्ड १, (**कोड 33**) खण्ड २, (**कोड 34**) खण्ड ३, (**कोड 36**) खण्ड ५ स्टाकमें उपलब्ध है। (**कोड 35**) खण्ड ४, (**कोड 37**) खण्ड ६ तैयार हो रहा है। प्रत्येक खण्ड अलगसे भी उपलब्ध, मूल्य ₹३२५

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०१७)-की सितम्बर/अक्टूबर माहमें उपलब्धि सम्भावित।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (**कोड 1431**)—संस्कृत मूल हिन्दी अनुवाद, **बँगला** अनुवाद, (**कोड 1489**), **ओड़िआ** अनुवाद, (**कोड 1644**), **तेलुगु** अनुवाद, (**कोड 1714**); प्रत्येकका मूल्य ₹ ७०

सुन्दर प्लास्टिक आवरण (**कोड 503**)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ मूल्य ₹ ५५

पॉकेट साइज—सुन्दर प्लास्टिक आवरण (**कोड 506**)— गीताके मूल श्लोक मूल्य ₹ ३०